Chap-2

द्वितीय अध्याय

महानगरीय उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय

द्वितीय अध्याय

महानगरीय उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय :---

प्रास्ताविक :

प्रबंध का संबंध महानगरीय उपन्यासों से है, अतः इस अध्याय में लगभग २५-३० महानगरीय परिवेश से संपृक्त उपन्यासों का अनुशीलन प्रस्तुत करने का उपक्रम है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् विश्व भर में नगरीकरण की प्रक्रिया तेज हो गयी है। अपने यहाँ भी यह प्रक्रिया छिप्रगति से बढ़ रही है। गाँव कस्बे, कस्बे नगर और नगर महानगर की स्थिति की ओर संक्रमित हो रहे हैं। अतः पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में भारत में महानगरों की संख्या में भी बृद्धि हुई है। पहले मुंबई, दिल्ली, मद्रास (चेन्नई) और कलकत्ता जैसे नगरों की गणना ही महानगरों में होती थी, किन्तु अब बैंग्लोर, हैदराबाद, पूणे, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, अहमदाबाद आदि नगर महानगर की ओर बढ़ रहे हैं। महानगरीय जीवन का सामाजिक ढाँचा भी बदल रहा है। यद्यपि

नगरीय और महानगरीय जीवन-शैली में अधिक अन्तर परिलक्षित नहीं किया जा सकता, तथापि नगरीजीवन की तुलना में महानगरीय जीवन में अधिक स्वतंत्रता, स्वच्छंदता या उन्मुक्तता को रेखांकित किया जा सकता है। महानगरों में निवास-स्थान और नौकरी या व्यवसाय के स्थान में काफी अन्तर पाया जाता है। कभी-कभी तो निवास-स्थान से नौकरी या व्यवसाय के स्थान पर पहुँचने में कई-कई घंटे व्यतीत हो जाते हैं। परिणामस्वरूप अपरिचय का वातावरण तैयार होता है। फलतः सामाजिक दबाव और मान्यताओं (Social Tabooes) का प्रभाव कम हो जाता है। पुराने जीवन-मूल्यों का ह्रास होने लगता है। वैयक्तिकता का भाव बढ़ने लगता है। संयुक्त-परिवार-प्रथा चरमराने लगती है। संयुक्त-परिवार, युग्मक-परिवार और एकक-परिवार में परिवर्तित होने लगते हैं। इन सबका अच्छा-बुरा प्रभाव मानव-जीवन पर पड़ता है। प्रस्तुत अध्याय में महानगरीय-जीवन पर आधारित ''वे दिन'',''अंधेरे बंद कमरे'', ''तीसरा आदमी'',''मछली मरी हुई'', ''टेराकोटा'' ,''रेखा'', ''छोटे-छोटे पछी'', ''रुकोगी नहीं राधिका'', ''अनारो'', ''मुर्दाघर'', ''किस्सा नर्मदा बेन गंगूबाई'',''बोरीवली से बोरीबंदर तक'',''महानगर की मीता'',''पतझड़ की आवाजें'',''बंटता हुआ आदमी'',''आपका बंटी'',''चित्तकोबरा'',''उसके हिस्से की धूप'', ''दिनांत'', ''तत्सम'',''कोहरे'',''छाया मत छूना मन'', ''कृष्णकली'', ''नावें'',''सीढ़ियाँ'',''छिन्नमस्ता'',''मुझे चाँद चाहिए'',''उन्माद'' प्रभृति २५-३० उपन्यासों का अनुशीलन प्रस्तुत करने का उपक्रम है।

वे दिन : ---

हिन्दी उपन्यासों में अंतरराष्ट्रीय परिवेश का चित्रण बहुत कम उपन्यासों में हुआ है। इस दृष्टि से ''वे दिन'' का विशेष महत्त्व है। इसमें चैकोस्लोवाकिया की राजधानी ''प्राग'' के परिवेश को लिया गया है। उपन्यास में प्राग के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग हुआ है, जैसे--''द मदर ऑफ सिटीज़ , द गोल्डन सिटी, द सिटी ऑफ हन्ड्रेडटावर्स , द सिटी ऑफ टियर्स एण्ड नाइट मेयर्स आदि आदि। प्राग के विभिन्न स्थान; - इजेरा,

पेलीकोन, रिल्के-रेन्देवू आदि पब तथा रेस्टोरॉं, स्लिवोबित्से, चियान्ती, कोन्याक, बियर आदि विभिन्न शराबों के नाम आदि प्राग के महानगरीय परिवेश को उद्घाटित करते हैं। युद्धोत्तर यूरोपीय परिवेश ही एक प्रकार से उपन्यास का नायक है। "वे दिन" "यूरोप की महायुद्धोत्तर नयी दिशा-हारा पीढ़ी के संत्रास, घुटन, तनाव, मूल्यहीनता, अर्थहीनता और उसके रीतापन को रूपायित करने वाला उपन्यास है।"[१]

यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि नगरीय जीवन में स्नेही-स्नेही मानवीय संबंधों की उष्मा निशेःष होती जाती है। महानगरों में तो यह प्रक्रिया और भी तीव्रतम हो जाती है। मानवीय रिश्ते झूठे और खोखले लगने लगते हैं। संबंधों की दृष्टि से मानव-जीवन की यह छिन्नभिन्नता हमें नायक "मैं", जाक, रायना, मारिया, फ्रान्ज, टी. टी. आदि सभी पात्रों में दृष्टिगोचर होती है। जाक और रायना का खोखलापन महायुद्धोत्तर विभीषिका की परिणति है। युद्ध ने तमाम आस्थाओं, मूल्यों को लील लिया है। युद्ध तो चला जाता है, परंतु उसकी अभिशप्त अंतहीन छाया हमेशा मंडराती रहती है, जो युद्ध में बचे हुए लोगों की समूची चेतना को हर लेती है। रायना इस संदर्भ में कहती है-- "लेकिन कुछ चीज़ें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं- शांति के दिनों में हम उनमें से एक थे।.......वे लोग घरेलू जिन्दगी में खप नहीं पाते।....मैं किसी काबिल नहीं रह गयी हूँ.......नाट ईवनफार लव। पीस किल्ड इट......."[२]

रायना, जाक, मारिया, फ्रांज प्रभृति के जीवन का खोखलापन अजनवीपन आदि तो युद्धोत्तर महानगरीय परिवेश के कारण है, परंतु "मैं" और "टी.टी." की वेदना कुछ अलग प्रकार की है। यह दोनों पात्र अपनी ज़मीन से कट गए हैं। जीवन से कटने की यह प्रक्रिया भी महानगरीय जीवन का ही परिणाम है। "मैं" की संवेदना इतनी भोथरी हो गयी है कि अपनी सगी बहन का पत्र अनेक दिनों तक वह पढ़ता भी नहीं है। टी. टी. अपनी माँ के दूसरे विवाह पर मित्रों को पार्टी देता है। उसका यह कार्य भी उसके भीतर के खोखलेपन को उजागर करने वाला है। मूल्यहीनता, अर्थहीनता, संत्रास, घुटन आदि बातें हमें महानगरीय जीवन के पात्रों में विशेषतया मिलती है। फलतः महानगरीय जीवन में लोग प्रायः मानसिक पलायन हेतु विभिन्न शराबों

और ड्रग्स (Drugs) का सहारा लेते हैं। इस तथ्य को भी यहाँ रेखांकित किया जा सकता है।

महानगरीय परिवेश में यौन विषयक दृष्टिकोण में अधिक स्वतंत्रता और उन्मुक्तता दृष्टिगाचर होती है। कस्बों और छोटे शहरों में लोग एक-दूसरे को नज़दीक से जानते हैं। अतः सामाजिक दबावों (Social sencership) के कारण वहाँ यौन जीवन में उन्मुक्तता नहीं मिलती। महानगरों में नारी कहीं-कहीं आर्थिक दृष्टि से भी आत्मनिर्भर हो गयी हैं। फलतः यौनविषयक पुराने जीवन-मूल्यों को वह नकारती है। यहाँ स्त्री-पुरुष यौन को जीवन की एक आवश्यकता के रूप में लेते हुए उसे पवित्रता और नैतिकता जैसे मूल्यों से प्रतिबद्ध करके नहीं देखते। यौन आवश्यकता के कारण वे विवाह संस्था को भी उतना आवश्यक नहीं मानते। रायना और जाक अलग हो गए हैं और अपनी-अपनी यौन-तृप्ति अपने तरीकों से कर लेते हैं। रायना वीकैन्ड या छुट्टियों में अलग-अलग शहरों में जाकर अपनी यौन-तृप्ति के लिए कोई न कोई शिकार ढूंढ़ लेती है। वह उसे शरीर की एक आवश्यकता के रूप में लेती है और उसे लेकर उसमें किसी प्रकार का अपराधबोध (guilt) नहीं पाया जाता। दूसरे को यदि पछतावा न हो तो वह उसमें किसी प्रकार की बुराई नहीं देखती है। यह व्यापार वह शारीरिक और बौद्धिक स्तर पर करती है। उसमें किसी प्रकार की भावुकता या रोमानीपन को स्थान नहीं है। रायना जब प्राग में आती है तब अपने "इण्टरप्रेटर", उपन्यास के नायक "मैं"के साथ एक रात गुजारती है। नायक उसमें भावनात्मक दृष्टि से संपृक्त होता है, परंतु रायना इसे नितांत निरपेक्षता और तटस्थ भाव से लेती है। नायक के आग्रह करने पर, वह रुकती भी नहीं है। पश्चिम में "love" शब्द क्रमशः अपनी व्यापकता खो रहा है। वहाँ केवल शारीरिक व्यापार मात्र रह गया है जिसे रायना में लक्षित किया जा सकता है। रायना इस प्रकार अनेक पुरुषों से संबंध स्थापित करती है, तथापि हम उसे वैश्या या कुलटा नहीं कह सकते। वैश्या धन के लिए अपने शरीर का सौदा करती है, रायना अपनी मौज के लिए अलग-अलग पुरुषों से संबंध रखती है। इस व्यापार में हृदय का दखल उसे स्वीकार नहीं।

विवाह-संस्था के टूटने के कारण महानगरीय सामाजिक जीवन जब छिन्न-

भिन्न हो रहा है। इस समूची प्रक्रिया में सबसे सर्वाधिक दयनीय स्थिति बच्चों की होती है। बच्चों को अपने माता-पिता और परिवार से जो प्यार मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। शिशु अवस्था से ही उन्हें हॉस्टल में रहना पड़ता है, जहाँ उन्हें शिक्षा तो मिल सकती है संस्कार नहीं। यूरोप में हिपी और विटलवाद के फैलने का यह भी कारण है। जाक और रायना का बेटा मीता हॉस्टेल में रहता है पर समस्या तब आती है जब छुट्टियाँ होती हैं। छुट्टियों में ये मीता को बाँट लेते हैं। यह बाँटना प्रेम के कारण न होकर दायित्व दबाव के कारण है।

शिक्षा और नारी मुक्ति चेतना के कारण महानगरीय परिवेश में जहाँ नारी आत्मनिर्भर स्वतंत्र और उन्मुक्त हुई है वहाँ अपने अस्तित्व को लेकर असुरक्षा और अकेलेपन से भी उसे जूझना पड़ रहा है। महानगरीय नौकरीशुदा नारी अपने रूप और अवस्था के लिए भी चिंतित है, बढ़ते हुए ब्यूटीपार्लर उसके प्रमाण हैं। परिवार टूटते-टूटते एकक परिवार की स्थिति में आ गया है। सौंदर्य और यौवन के सहारे नारी जिंदगी के एक दौर को तो पूरा कर लेती है। भविष्य उसे अंधकारमय नज़र आता है। ''वे दिन'' में महानगरीय जीवन के इस पक्ष को भी उद्घाटित किया गया है। इस प्रकार महानगरीय जीवन के विभिन्न पक्षों और आयामों को देखते हुए ''वे दिन'' एक महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक रचना है ऐसा कहा जा सकता हे।

o o

अँधेरे बंद कमरे (मोहन राकेश) :---

अँधेरे बंद कमरे मोहन राकेश का एक बहुचर्चित उपन्यास है। उपन्यास का शीर्षक ही महानगरीय जीवन के बोध को कराने के लिए पर्याप्त है। महानगरीय लोगों का जीवन एक प्रकार से अँधेरे बंद कमरों जैसा होता है। दिशाहीनता, मूल्यहीनता आंतरिक खोखलापन और भीतर का अँधेरा यही सब कुछ तो प्रायः महानगरीय जीवन में दृष्टिगत होता है। यहाँ आदमी भीड़ में भी अकेला है। महानगरीय जीवन में हमें स्पष्टतया दो प्रकार का जीवन दिखाई पड़ता है--प्रथम- मध्यवर्ग , ऊँच मध्यवर्ग और उच्च मध्यवर्ग का जीवन और

दूसरा निम्नवर्ग का जीवन। महानगरों में जहाँ एक तरफ सीमेन्ट और कोंक्रेट के जंगल बढ़ रहे हैं वहाँ दूसरी तरफ झोंपडपट्टियाँ और गंदी-बस्तियाँ हैं, जिनका जघन्य, घिनौना, विभत्स रूप देखकर ऊबकाई आने लगती है। राकेश जी ने प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय इन दोनों आयामों को रखा है। एक तरफ नीलिमा, मधुसूदन लोगों का सोफेस्टीकेटेड समाज है, कॉफी हाऊसों और कॉन्फरन्सों के बहस-मुबाहिसे और गहमागहमी है तो दूसरी तरफ कस्साबपुरा की गंदी घिनौनी बस्ती का वर्णन भी मिलता है। इस संदर्भ में श्रीकांत वर्मा ने उपन्यास के संगठन में दोष बताते हुए कहा है कि- इस उपन्यास में ड्राइंग-रूम और सड़क का एक साथ चलते हैं। ड्राइंग-रूम हरबंस-नीलिमा तथा उनके वर्तुल का 'सोफेस्टीकेटेड' समाज है, तो सड़क दिल्ली की निम्नवर्गीय कस्साबपुरा आदि की जिन्दगी का चित्र है।[३] परंतु डॉ. वर्मा के मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि अँधेरे बंद कमरे महानगरीय जीवन को निरूपित करनेवाला एक बृहदकाय पेनोरमिक उपन्यास है। यदि उसका औपन्यासिक रूप लघु उपन्यास का होता तो लेखक दो में से एक को चुनने के लिए स्वतंत्र था। अतः महानगर के दोनों रूपों को चित्रित करना हमारी दृष्टि में असमीचिन नहीं है, बल्कि इसके अभाव में चित्र अधूरा रहता।

उपन्यास में वातावरण का चित्रण महानगरीय जीवन-शैली के अनुरूप है। उपन्यास के अधिकांश पात्र सुसंस्कृत हैं। साहित्य कला तथा समाजशास्त्र इत्यादि पर निरंतर बहस करते रहते हैं। उपन्यास की नायिका नीलिमा कथक नृत्य तथा भरत-नाट्यम् में कुशल होकर नृत्य-कला के प्रदर्शन करती है। हरबंस अपनी थीसिस तैयार करने के लिए विदेश यात्रा पर जाता है। मधुसूदन पत्रकारत्व का जीवन व्यतीत करता है। लेखक ने इन सब पात्रों के द्वारा जिस सांस्कृतिक वातावरण को निर्मित किया है वह महानगरीय जीवन के अनुरूप है। इस संदर्भ में लेखक होटलों, रेस्तराओं और 'बार' (मदिरालय) इत्यादि की चर्चा करते हैं। दिल्ली के कॉफी हाउस का चित्रण करते हुए वहाँ के वातावरण का दृश्य स्पष्ट करते हैं --"कॉफी-हाउस का शीशे का दरवाजा बार-बार खुलता और बंद होता है। कुछ लोग इस तरह अंदर आते हैं जैसे वहाँ किसी अधियुक्त की तलाश कर रहे हों। आकर दो एक जगह ठिठक कर

चारों तरफ देखते हैं......सिगरेट के धुएँ में चीनी की प्यालियाँ और काँच के गिलासों के रखने उठाने की आवाज पृष्ठभूमि की संगीत की तरह चलती रहती है.......कहीं चम्मच और छुरी झनझनाते हैं, और कहीं कोई गिलास सहसा गिरकर टूट जाता है, जिससे उफनते हुए शोर में पलभर के लिए एक विराम आ जाता है।[४] इस प्रकार लेखक महानगरीय परिवेश को चित्रित करने में सफल हुआ है।

उपन्यास का जो विचार-सूत्र (theme) है वह भी महानगरीय जीवन का परिणाम और उसके अनुरूप है। नीलिमा सुशिक्षित, सुसंस्कृत नाट्यकला, चित्रकला आदि में अत्यंत कुशल है। उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र और आकर्षक है, जिसे हम आजाद ख्याल भी कह सकते हैं। हरबंस और नीलिमा के जीवन में जो समस्याएँ पैदा होती हैं वह भी महानगरीय जीवन की उपज हैं। यदि हरबंस या नीलिमा गाँव, कस्बै या छोटे नगर में होते तो वह नौबत ही न आती। महानगरों में हरबंस जैसे नायक होते हैं जो चाहते हैं कि उनकी पत्नी स्मार्ट हो, आधुनिक विषयों में दक्ष हो और जो काफी-हाऊसों तथा सेमिनारों में सिरकत करे, चर्चा और वाद-विवाद करे। स्त्री का यह मोहक व्यक्तित्व तो लुभाता है परंतु दूसरी तरफ पुरुष अहं की मानसिकता को वे बिल्कुल छोड़ नहीं पाते। अतः किसी क्षेत्र में जब कोई स्त्री आगे बढ़ जाती है, तब उनकी वह पुरुष मानसिकता को यह बर्दाश्त नहीं होता। हरबंस नीलिमा को चित्रकला, नाट्यकला आदि के लिए प्रेरित करता है, परंतु जब नीलिमा उनमें दक्षता प्राप्त करने लगती है तब वह उनमें पीछे हट जाता है, तब वह अपनी कपुरूषता का प्रदर्शन करता है तभी तो नीलिमा हरबंस से कहती है --"तुम सिर्फ इस हीन-भावना के शिकार हो कि लोग मुझे तुमसे ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में होती है। तुम्हें यह बात खा जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा नीलिमा के पति के रूप में करते हैं। तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ, तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोगे।"[५]

इस प्रकार का दाम्पत्य जीवन गड़बड़ाने लगता है। मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बण्टी' के प्रारंभ में अजय और शकुन की जो स्थिति है

लगभग वही स्थित हरबंस और नीलिमा के बीच है। इस प्रकार की सामाजिक-पारिवारिक स्थिति महानगरीय जीवन में ही संभव है। हरबंस और नीलिमा का प्रेम-विवाह है। प्रेम-विवाह भी महानगरों में ही पाये जाते हैं। विवाह से पूर्व 'कार्टशीप' के दिनों में नीलिमा-हरबंस का उन्मुक्त रूप से घूमना भी महानगरीय परिवेश में ही संभव हो सकता है। महानगरों में संयुक्त परिवार की परंपरा विलुप्त हो गयी है। यहाँ परिवार में पति-पत्नी और बच्चे को ही गिना जाता है। आपका बंटी में तो दोनों के बीच बंटी है, यहाँ नीलिमा और हरबंस के बीच बच्चे को लेकर भी विवशता नहीं है। अतः भले लेखक ने न बताया हो अंत में दोनों पात्रों की मानसिकता के जो संकेत मिलते हैं उससे फलित होता है कि दाम्पत्य जीवन का तालमेल अधिक नहीं रह सकता। तलाक की स्थिति कभी भी आ सकती है। यह तलाक भी महानगरीय जीवन का ही परिणाम है।

महानगर के लोगों की जीवन-पद्धति ऐसी होती है कि व्यक्ति सनेही-सनेही (शनैः शनैः) अपने घर-परिवार से कटता जाता है। पारिवारिक विघटन इस कक्षा तक होता है कि स्थिति एकिक परिवार तक आ जाती है। व्यक्ति भीड़ में भी अकेला हो जाता है और अपने आस-पास के परिवेश में स्वयं को अजनबी महसूस करता है। ऐसे में धीरे-धीरे व्यक्ति और व्यक्ति के बीच शीत संबंध बढ़ते हैं। संबंधों में जो भावनात्मक आवेग और उष्मा का अभाव दृष्टिगत होता है। 'अँधेरे बंद कमरे' उपन्यास में भी हम इस तथ्य को रेखांकित कर सकते हैं। नीलिमा एक स्थान पर कहती है-"हम लोगों में एक दूसरे के प्रति जो उत्साह होना चाहिए, वह उत्साह धीरे-धीरे समाप्त हो गया है। हम लोग पति-पत्नी हैं, परंतु पति-पत्नी में जो चीज़ होती है, जो चीज़ होनी चाहिए वह हम में कब की समाप्त हो चुकी है। और अगर मैं ठीक कहूँ, तो वह चीज़ कभी थी ही नहीं।"[६]

महानगरों में रक्तसंबंधों की अपेक्षा द्वीतियक प्रकार के संबंध के अधिक विकसित होते हैं। इन संबंधों के पीछे किसी न किसी प्रकार की स्वार्थ भावना होती है। अंधेरे बंद कमरे भी सुषमा श्रीवास्तव एक आधुनिक स्त्री पात्र हैं अपना काम निकलवाने के लिए वह नए-नए संबंधों को स्थापित करती है। इसमें स्पर्धा भाव बहुत अधिक है। वह हर क्षेत्र में पुरुष से स्पर्धा करने की

इच्छुक है। 'कान्सीक्यूशन-हाउस' में वह पत्रकार मधुसूदन के अधिक करीब आने का प्रयत्न करती है, क्योंकि उसकी सहायता से वह विदेश जाने में सफल हो सकती है। परंतु मधुसूदन को सुषमा-श्रीवास्तव की बातों में पोलिटिकल सेक्रेटरी ने जो बात कही थी उसकी गंध आती है और वह उससे कट जाता है। फलतः सुषमा में डिप्रेशन का भाव आता हे। इस डिप्रेशन के कारण वह टूटने लगती है। यह डिप्रेशन भी महानगरीय जीवन का अभिशाप है।

इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ. पारूकान्त देसाई महानगरीय जीवन के कुछ तथ्यों को रेखांकित करते हैं। यथा-हरबंस-नीलिमा की इस कथा की पृष्ठभूमि में लेखक ने महानगरीय जीवन के विभिन्न आयामों को उद्घाटित किया है। पार्टियाँ, सांस्कृतिक डेलिगेशन, पत्रकारिता, उसके हथकण्डे, भौतिकता की दौड़ में पत्नी को साधन रूप बनाना, साहित्य-कला-नृत्य आदि पर काफी - हाउसों में बहसों का चलना, स्त्री-स्वतंत्रता की आड़ में उसे वासना की कठपुतली बनाना तथा उसके विपरीत दूसरे छोर पर दिल्ली की कस्साबपुरा जैसी गंदी भिनकती गलियों में लोगों का कीड़े-मकोड़ों की तरह जीना आदि हमें महानगर दिल्ली के जीवन को समझने में और उतने अंश में महानगरीय जीवन को समझने में सहायक होता है।[७]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय जीवन के सभी आयामों को उकेरा गया है। उसमें जहाँ निम्म मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग के घिनौने जीवन की छवि है, वहाँ तथाकथित सौफेस्टीकेटेड वर्ग के लोगों की निष्क्रियता और निरवीर्यता को भी रेखांकित किया गया है।

००

तीसरा आदमी (सन् १९६४) :---

उपन्यास के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है कि -"प्रेम अथवा प्रतिद्वन्द्विता के नाते तीसरा आदमी आदिकाल से स्त्री और पुरुष के बीच आता रहा है, लेकिन कमलेश्वर का तीसरा आदमी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों की उपज है।"[८] प्रस्तुत कथन को थोड़ा-सा परिवर्तित करके कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में तीसरा आदमी महानगरीय

परिस्थितियों की उपज है। नरेश चित्रा और सुमन्त के बीच घूमती हुई यह कहानी अन्य प्रणय-त्रिकोणात्मक कहानियों से भिन्न है। ग्रामीण या कस्बायै परिवेश में पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति दो कारणों से होती है- आर्थिक कारण और चारित्रिक स्खलन। ग्रामीण परिवेश में गरीब निम्न वर्ग की स्त्रियों को चाहे अनचाहे मालिक वर्ग से संबंध रखना पड़ता है; जिसे, धरती धन न अपना, सूखता हुआ तालाब, अलग-अलग वैतरणी जैसे उपन्यासों में हम परिलक्षित कर सकते हैं। पति-पत्नी में तीसरे व्यक्ति का परिवेश चारित्रिक शिथिलता के कारण भी होना है जो सार्वत्रिक है, परंतु प्रस्तुत उपन्यास में नरेश और चित्रा के बीच सुमन्त का जो दखल है वह नगरीय-परिस्थितियों के कारण है।

नरेश पहले इलाहाबाद में आकाशवाणी में सेवारत था, जब तक वह इलाहाबाद में रहा उनका दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक चलता रहा। परंतु दिल्ली आ जाने के बाद उनके दाम्पत्य जीवन की दीवार को शंका का कीड़ा खोखला करने लगा। संशय बहुत बुरी बला है। जैसे कोई कीड़ा बृक्ष में लग जाता है तो बृक्ष खोखला हो जाता हे। ठीक उसी प्रकार शंका-कुशंका का कीड़ा दाम्पत्य जीवन के बृक्ष को खोखला कर देता है। पति-पत्नी के जीवन में विश्वास का तत्त्व उसके प्राणतत्व के समान है। एक बार जब यह विश्वास डगमगाने लगता है , तो दाम्पत्य जीवन की धुरी गड़बड़ाने लगती है।

दिल्ली आ जाने पर नरेश के सामने रहने की समस्या उपस्थित हो जाती है। महानगरों में निवास की समस्या एक बहुत बड़ी समस्या है। गुजराती में एक कहावत प्रसिद्ध है "शहर मां रोटलो मणे पण ओटलो न मणे।" अर्थात् शहर में एक बार खाने का प्रबंध हो सकता है पर रहने का प्रबंध नहीं हो सकता। सुमंत नरेश का दूर का रिश्ते का भाई है। अतः दिल्ली आने पर नरेश सुमंत के साथ रहने लगता है। सुमंत के पास एक ही कमरा है और यह कमरा उन्हें Share करना पड़ता है। आर्थिक कठिनाईयों के कारण नरेश और चित्रा सुमन्त के साथ एक कमरे में रहने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

पहले पति-पत्नी में तीसरे पुरुष का प्रवेश चारित्रक स्खलन के निमित्त होते थे। परंतु आज की बढ़ती हुई स्थितियों में महिलाएँ सकूलों, कॉलेजों

में काम करने लगी हैं। उनके जीवन में पति के अतिरिक्त जाने-अनजाने न्यूनाधिक मात्रा में होने लगता है। "जहाँ महानगर का व्यक्ति इसके साथ समझदारी पूर्वक का या पुरानी विचारधारा के अनुसार कायरतापूर्ण समझौता कर लेता है, वहाँ कस्बाई मनोवृत्ति का मध्यवर्गीय पुरुष कुछ हिचक का अनुभव करता है। और उसी में वह टूटने लगता है। प्रस्तुत उपन्यास में नरेश का टूटना इसी प्रकार का है।"[१]

यहाँ नरेश और चित्रा के दाम्पत्य जीवन में जो स्थिरता और छिन्न-भिन्नता आती है, वह विशुद्ध रूप से महानगरीय जीवन का परिणाम है। यदि नरेश को अपनी सीमित आमदनी के अनुसार कोई कमरा मिल जाता तो वह सुमंत के साथ वह रहने को बाध्य नहीं होता। पति-पत्नी के साथ यदि कोई समवयस्क व्यक्ति रहता है तो एक निश्चित समय के आद संशय की काली छाया उनके जीवन पर मंडराने लगती है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। एक ही कमरे में रहने के कारण कुछ शील, संकोच और मर्यादा शनैः शनैः टूटने लगती है और फलतः दो समवयस्क व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से भी पारस्परिक निकटता साधने लगते हैं। सुमंत जो दूर के रिश्ते का भाई है, किंतु यदि नरेश का सगा भाई, भतीजा, भांजा होता और चित्रा का समवयस्क होता तो भी उनके संबंध शंका से परे नहीं हो सकते थे। नरेश की नौकरी का रूटीन भी उनकी स्थिति को और गंभीर बना देता है। नरेश की नौकरी ऐसी है कि उसे महीने में कुछ दिन बाहर रहना पड़ता है। उन दिनों में वह बहुत ही परेशान रहता है। बाहर रहते हुए भी उसका मन घर पर ही रहता है। चित्रा से प्रेम के कारण यदि ऐसा होता तो स्थिति को श्लाघ्नय कहा जा सकता था, परंतु यहाँ पर प्रेम के कारण नहीं, शंका के कारण होता है। यात्रा के ये दिन पति-पत्नी दोनों के लिए बड़ी यत्रंणा के दिन होते हैं। चित्रा भी नरेश के आने पर बार-बार उन घटनाओं और स्थितियों का जिक्र करती है कि जिनसे यह प्रतिफलित होता है कि सुमंत उन दिनों बाहर सोता रहा है। इस मानसिक दबाव और यंत्रणा के कारण नरेश-चित्रा के संबंध साधारण (Normal) नहीं रह पाते हैं। एक स्थान पर नरेश कहता है---" चित्रा के आस-पास मंडराती सुमन्त की यह छाया नरेश को पागल-सा बना देती है। उसके ही शब्दों में रात

में.....जब मैं चित्रा को अपनी बाहों में लेता तो एक अजनबी गन्ध फूटती थी। वह छाया मँडराती हुई कहीं से आती थी और मुझसे पहले उसकी बाहों को जकड़ लेती थी.......जब उसकी बाहों पर हाथ रखता तो वहाँ दो हाथ पहले से मौजूद होते थे। वह छाया मुझे चित्रा के पास पहुँचने से रोकती थी....चित्रा की आँखों में जब मैं झाँकता था तो वहाँ चार आँखें झाँकती होती थीं......चार बाँहें उसे कस रही होती थीं, चार होंठ उसे प्यार कर रहे होते थे ......।''[१०]

लगभग इन्हीं स्थितियों को लेकर शैलेष मटियानी की कहानी मिलती है। वहाँ कहानी का नायक कभी मित्र के साथ इलाहाबाद में रहता था। तब मित्र पत्नी के साथ उसके शारीरिक संबंध बनते हैं। कुछ वर्षों बाद वह दिल्ली चला आता है। इस बीच उसका विवाह हो जाता है। कहानी नायक की नौकरी भी टूरिंग जॉब है और जब उसे पन्द्रह दिन के लिए बाहर जाना था तभी उस मित्र का पत्र आता है कि वह कुछ दिनों के लिए दिल्ली आ रहा है। यहाँ पर भी कहानी नायक के मन में अपने मित्र को तरह-तरह की शंकाएँ-कुशंकाएँ होती हैं, क्योंकि वह स्वयं उन स्थितियों से गुज़र चुका है। संयुक्त परिवार में घर में किसी न किसी की उपस्थिति रहती है। परंतु आज के नगरीय जीवन में व्यक्ति विभक्त हो चुका है। ऐसी स्थितियों में उसे नरेश वाली यंत्रणा से गुज़रना पड़ता है। इसे हम महानगरीय जीवन की त्रासदी भी कह सकते हैं।

००

डाक बँगला (कमलेश्वर) :---

डाक बँगला कमलेश्वर का नगरीय परिवेश की परिणतियों को उद्घाटित करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका इरा एक आधुनिक भावबोध संपन्न युवती है। जिसके जीवन में चार पुरूष आते हैं---विमल, बतरा, बूढ़ा, डॉक्टर और मेजर सोलंकी। परंतु जिसे सच्चा प्रेम कहा जा सकता है, वह तो केवल उसके प्रेमी विमल के साथ का ही है। उसकी आत्मा हमेशा विमल के लिए तरसती है। बत्रा, बूढ़ा, डॉक्टर और मेजर सोलंकी उसके जीवन में आते हैं परंतु उसे केवल समझौता ही कहा जा सकता

है। उपन्यास की तीन चौथाई कथा आत्मकथात्मक ढंग से कहीं गयी है। उपन्यास की नायिका इरा अपनी वैयक्तिक मानसिक परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए कश्मीर यात्रा को चल पड़ती है। इस कश्मीर यात्रा के दौरान इरा अपने सह-यात्री एवं अंतरंग मित्र तिलक को आधी रात के बाद वीरान जंगल में जाकर अपनी रामकहानी सुनाती है। विमल, बत्र, और बूढ़े डॉक्टर तक की कथा वह तिलक से कहती है। मेजर सोलंकी वाला प्रसंग बाद में घटित होता हुआ बताया गया है।

इरा के रूप-सौंदर्य, व्यक्तित्व और निखालसता से आकर्षित होकर तिलक भी उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है, परंतु इरा तिलक के प्रस्ताव को ठुकरा देती है। क्योंकि वह अब अपने अनुभव से इस सत्य को भली-भाँति समझ गई है कि पुरूष हमेशा यह अपेक्षा रखता है कि वह जिस स्त्री को चाहता है उसके जीवन में कोई दूसरा पुरूष न हो। भावना या कामना के ज्वार में यदि कोई पुरुष ऐसी स्त्री को स्वीकारता है, जिसके जीवन में उसके अलावा भी कई पुरुष आये हैं तो कामना के उस ज्वार के समाप्त होते ही किसी न किसी बहाने से उसे प्रताड़ित किये बिना नहीं रहता। अतः तिलक और मेजर सोलंकी में से वह मेजर सोलंकी को पसंद करती है, क्योंकि मेजर के जिन्दगी में भी इरा के अलावा कई स्त्रियाँ आयी हुई हैं।

''डाक बंगला'' शब्द को लेखक ने एक प्रतीक के रूप में लिया है, ''इरा'' का जीवन भी मानो ''घर'' नहीं डाक बंगला के मानींद है। जैसे डाकबंगला में लोग कुछ समय के लिए ठहरते हैं और चले जाते हैं ठीक उसी तरह से इरा की जिंदगी में भी कोई पुरुष आखिर तक नहीं ठहरा। इरा की जिंदगी दूसरे लोगों के लिए एक पड़ाव, एक डाक-बंगला बनकर रह गई है। स्वयं इरा एक स्थान पर कहती है--''मेरा पड़ाव कहीं भी नहीं है।.....रास्ते में कोई गंदी चाय की दुकान आ गई तो लोग वहाँ भी रुककर एक प्याला पी लेते हैं।''[११] उपन्यास में कश्मीर, नागपुर, सिमला आदि स्थानों का ज़िक्र हुआ है, परंतु इरा का अधिकांश समय बत्रा के साथ दिल्ली में व्यतीत हुआ है तथा इरा के जीवन की परिणतियाँ भी महानगरीय जीवन के अनुरूप है। अतः हम प्रस्तुत उपन्यास को अपने अध्ययन की परिधि में समेट रहे हैं।

उपन्यास की कुल कथा इतनी है कि इरा और विमल नाटक के जीव थे, इसी सिलसिले में इरा सिमला में विवाह पूर्व विमल को समर्पित हो जाती है। परंतु विमल अत्याधिक भावुक और शंकाशील स्वभाव का है। नाटक में अपने और विमल के कैरियर को बनाने के लिए वह मि. बत्रा के यहाँ फोन एटेन्डण्ट की नौकरी स्वीकार कर लेती है और उसका यह कदम ही उसकी जिंदगी को दिशाहीन कर देता है। मि. बत्रा की ''मायावती'' समाज में ठीक़ नहीं थी। एक दिलफेंक चरित्रहीन व्यक्ति के रुप में बत्रा को जानते थे। अतः विमल इरा और बत्रा के संबंधों को लेकर शंकाशील हो जाता है। और उसे छोड़कर मुंबई चला जाता हे। विमल यह सोचता है कि बत्रा ने इरा को उसकी आर्थिक संपन्नता के आधार पर ही छीन लिया है। आर्थिक दृष्टि से बत्रा के सम्मुख वह अपने आपको छोटा पाता है। अतः उसकी यह हीनता ग्रंथि उसे शीघ्रातिशीघ्र धनवान होने के लिए अवैध रास्तों की ओर ले जाती है, जिसमें जाली नोटों को छापने के सिलसिले में उसे बारह वर्ष की कैद हो जाती है। विमल के चले जाने के बाद इरा के जीवन में बत्रा आता है। बत्रा जब शराब के नशे में होता है तब, उसके व्यवहार में बेहद भावुकता और मानवीयता का समावेश हो जाता है। उस समय वह चलता पुरजा हरफन मौला बत्रा नहीं रहता, किंतु बहुत भावुक (Emotional) आदमी हो जाता है , इरा उसकी इस मदहोशी में आदमी की खूबसूरती को तलाशती है और उसे समर्पित हो जाती है। अपनी इस भावुकता में शादी किये बिना ही बत्रा के साथ विवाहित जीवन व्यतीत करने लगती है। भावना के प्रथम ज्वार के समाप्त होने पर वह शनैः शनैः बत्रा के वैभव को भी चाहने लगती है और उसके साथ गृहस्थी बसाने के सपनों को देखने लगती है। इसके भीतर बैठी हुई नारी को बच्चे की बेहद लालसा है। वह किसी बच्चे की माँ होना चाहती है और बत्रा के साथ के संबंधों से उसे गर्भ भी रहता है। परंतु बत्रा तो स्त्री-पुरुष संबंधों में विश्वास रखता है। स्त्री-पुरुष के संबंधों को पति-पत्नी के संबंधों में बदलने का वह जरा भी इच्छुक नहीं है। अतः पहले तो वह इरा को गर्भ गिराने के लिए समझाता है, परंतु जब वह अपनी जिद पर अड़ी रहती है तब टॉनिक के बहाने दवाई पिलाकर वह उसके बृण को गिरा देती है। इरा का सपना चूर-चूर हो

जाता है। इरा टूट जाती है। बत्रा उसे मना भी लेता है। परंतु बत्रा स्वयं इरा से ऊब गया था। इसलिए इरा को वह नौकरी से हटा देता है। और उसके स्थान पर अपनी पुरानी प्रेमिका शीला को रख लेता है।

इसी शीला को हटाकर बत्रा ने इरा को रखा था। शीला के बारे में जानते हुए भी इरा बत्रा पर विश्वास कर लेती है। वस्तुतः महानगरीय जीवन के परिवेश से परिचित होते हुए भी इरा अपनी बेहद भावुकता में गलत कदम उठा लेती है और व्यवहार या व्यवसायिकता को भावना के पलड़ों में तौलने लगती है, वहीं पर वह ठोकर खाती है। शीला या इरा के साथ जो कुछ भी होता है वह महानगरीय जीवन का एक पक्ष हमारे सामने रखता है। महानगरों में पढ़ी-लिखी युवतियों का जो यौन-शोषण होता हे, उसे यहाँ इंगित किया गया है। बतरा का व्यवसाय महानगरीय जीवन पद्धति का ही एक हिस्सा है। बत्रा एक चलता-पुर्जा हरफनमौला आदमी है। महानगरीय सभ्य एवं उच्च समाज में व्याप्त नैतिक सामाजिक एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार के कारण ही उसका व्यवसाय चलता है। आजकल शहरों में व्यवसायिक लोगों में किसी को परमिट किसी को कोटा, किसी को लाईसन्स आदि की जरूरत पड़ती है और यह सब दिलाना ही बत्रा का व्यवसाय है। वह महानगरीय जीवन उसकी नौकरशाही उसकी जीवन-पद्धति और अफसरशाही तथा उसके रहस्यों से पूर्णरूपेण परिचित है। सरकार में बैठे अफसरशाही तथा व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में बैठे उच्च-पदाधिकारियों की नब्ज़ को वह भली-भाँति पहचानता है और उकने जरिए अपने काम करवाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे "लैडी सपलायर" भी कह सकते हैं। ऐसे व्यक्ति को इरा सद्गृहस्थ बनाने की आशा रखती तो वह रेत पर कोई इबारत लिखने जैसा है।

बत्रा के द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होने पर इरा बूढ़े डॉक्टर चंद्रमोहन की शरण में आती है। उसके दो बच्चों की उपर्जियन बनकर डिबरूगढ़ चली जाती है। वह उसके बच्चों की ही नहीं परंतु एक प्रकार से डॉक्टर चंद्रमोहन की भी गार्जियन जैसी है। इरा के जीवन में विमल और बत्रा जैसे लोग आ चुके हैं और इन दोनों के युवा उद्दाम प्रेम को वह भोग चुकी है। अतः बूढ़े डॉक्टर चंद्रमोहन से उसकी यौन संपृक्ति कैसे संभव है? डॉक्टर केवल उसकी

यौनाग्नि को भड़का-भड़काकर जाता है बाद में वह केवल तड़पती रह जाती है। अतः यथासंभव वह उसको टालने का प्रयत्न करती है, परंतु डॉक्टर बुढ़ापे में बच्चों-सा व्यवहार करता है। वह जिद्दाव जाता है। इरा को उन वितृष्णा स्थितियों और क्षणों से गुजरना पड़ता है। डॉक्टर के मुंह के कोनों से आता हुआ झाग इरा को बहुत परेशान करता है। अतएव इन परिस्थितियों को बर्दाश्त न कर पाने के कारण वह अपनी सहेली के यहाँ नागपुर चली जाती है। इधर एक दुर्घटना में डॉक्टर की मृत्यु हो जाती है। डॉक्टर से घृणा करते हुए भी उसकी अंतिम कारूणिक स्थिति इरा को झकझोर जाती है। इरा के मन में प्रारंभ से ही बच्चों की लालसा रही है। अतः अपना शेष जीवन वह डॉक्टर के बच्चों में लगा देना चाहती है। परंतु उसका वह स्वप्न भी पूरा नहीं होता, क्योंकि डॉक्टर की बहन उन बच्चों को लेकर चली जाती है। डॉक्टर की बहन इरा को बेहद घृणा करती है, क्योंकि वह अपने भाई की मृत्यु के लिए इरा को उत्तरदायी समझती है। इसे इरा के जीवन की विडम्बना ही समझना चाहिए कि इरा ने जिनको चाहा उन्होंने हमेशा निराधार और असहाय छोड़ दिया, पर जिस बूढ़े डॉक्टर को वह घृणा करती रही उसने उसे जीवन का ठोस आधार प्रदान किया। मरते-मरते डॉक्टर इरा के लिए १५००० रूपये छोड़ जाता है।

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास के अंत में तिलक इरा से अभिभूत होकर उसे अंगीकृत करने के लिए उसे तैयार हो जाता है। किंतु विमल, डॉक्टर के अनुभव से बहुत कुछ सीखी है और तिलक जैसे भावुक किस्म के व्यक्ति के स्थान पर घाट-घाट का पानी पिए मेजर सोलंकी जैसे व्यवहारिक व्यक्ति को पसंद करती है। मेजर सोलंकी के द्वारा उसका वह सेमल के लाल फूलों का खिलने वाला सपना साकार होने लगता है। परंतु तभी बीमारी की अंतिम अवस्था में विमल मिलता है। एक बार पुनः उसकी भावुकता उसे ठोकर खाने पर मजबूर कर देती है। जीवन की अंतिम बेला में इरा विमल को निराश नहीं करना चाहती थी। अतः मेजर सोलंकी को छोड़ विमल के साथ चली जाती है और सेमल के लाल फूलों वाला सपना तोड़ देती है। परंतु विमल की बीमारी असाध्य थी। वह अंतिम स्टेज पर थी। अतः वह

उसे पुनः अकेली छोड़कर सदा-सदा के लिए छोड़ जाता है । इरा यदि व्यवहारकुशल होती, व्यवहारिक होती, बुद्धि से निर्णय लेती तो मेजर सोलंकी के साथ अपनी गृहस्थी बसा लेती परंतु वह सदा दिल से निर्णय लेती है और वही उसे जिंदगी की बेहद कड़वी वास्तविकताओं से गुजरना पड़ता है। उपन्यास में एक स्थान पर इंगित किया गया है और जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी या दुर्घटना यही है कि हमें हर चीज़, हर सुख मिलता है, पर समय पर नहीं।[१२] इरा के जीवन की त्रासदी भी यही है। काश उसे विमल दो या तीन वर्ष बाद मिला होता, काश बत्रा जी जिंदगी में वह पन्द्रह बरस पहले आ गई होती, काश डॉक्टर से उसकी मुलाकात बीस वर्ष पहले होती या काश तिलक उसे पहले मिलता। तब उसके जीवन को कोई अर्थ मिल पाता। यहाँ इरा को केवल निरर्थक प्यार ही मिला। उसकी जिन्दगी महज एक डाक बंगला बनकर रह गई।[१३]

प्रस्तुत उपन्यास में उच्च एवं भद्र समाज में होने वाले सुशिक्षित नारी के लैंगिग शोषण, नैतिक शोषण के कोणों को इसमें नुकीला बनाकर प्रस्तुत किया गया है। इसे महानगरीय जीवन की एक वास्तविकता के रूप में देख सकते हैं। इरा के जीवन की परिणतियाँ भी महानगरीय जीवन के परिणाम स्वरूप हैं। इरा यदि संयुक्त परिवार में होती, इरा यदि इतनी पढ़ी-लिखी, आधुनिक नहीं होती तो कदाचित यह सब कुछ न होता। इरा के जीवन का एकाकीपन उसका संत्रास, उसकी घुटन, उसका जीवन महानगरीय जीवन को रेखांकित करता है। उपन्यास के अंत में आया हुआ यह वाक्य "चलो भाई सूटकेस, चलें ....।"[१४] यह वाक्य इरा के मन की शून्यता, रिक्तता, पीड़ा और घुटन को अभिव्यंजित करता है, जिसे हम महानगरीय-जीवन के वांच्छित-अवांच्छित अभिलक्षणों में शुमार कर सकते हैं।

००

सूरजमुखी अँधेरे के :---

सूरजमुखी अंधेरे के कृष्णा सोबती का महानगरीय चेतना और बोध को रूपायित करने वाला उपन्यास है। उसकी पृष्ठभूमि दिल्ली है। कृष्णा

सोबती के लेखन में हमें कई बार वस्तुगत और शिल्पगत प्रयोगशीलता दृष्टिगोचर होती है। कई बार जीवन के विविध पात्रों की सृष्टि के लिए सोबती जी विसदृष्टता पद्धति (theory of contrast) का प्रयोग करती हैं। जहाँ मित्रों मरजानी की सुमित्रावन्ती उर्फ 'मित्रो' एक विपुल वासनावन्ती (निमफो) नारी है , वहाँ प्रस्तुत उपन्यास की रक्तिका उर्फ रति भयंकर रूप से ठण्ठी स्त्री (फ्रिजिड वुमन) है। रक्तिका की यह फ्रिजिडिटी उसके शैशवकाल में हुए हादसे का परिणाम है। बचपन में जब वह स्कूल में पढ़ती थी तब आठ-नौ साल की उमर में एक ''सैक्सी मैनियाक'' व्यक्तिद्वारा वह बलात्कृत हुई थी। इस हादसे की इतनी घोर मानसिक प्रतिक्रिया उसमें होती है कि वह जातीय दृष्टि से असमर्थ हो जाती है। वह सुंदर है, उसमें गज़ब का आकर्षण है परंतु उसके प्रति कोई युवक आकर्षित होकर जब उसके समीप आता है तब जातीय जीवन की अंतिम परिणति में वह अत्यंत ''cold'' हो जाती है। इसे हम नारीगत नपुंसकता कह सकते हैं। ठीक इसी बिंदु पर रक्तिका का व्यवहार ''उग्र'' के उपन्यास ''बुधुआ की बेटी'' की रधिया से बिल्कुल दूसरे छोर पर पड़ता है। रधिया भी बहुत ही सुंदर है। वह पुरूषों को रूप (सौंदर्य) जाल में फँसाकर अंततः उन्हें विक्षिप्त बना देती है। रधिया यह प्रतिशोध की भावना के तहत करती है। रति में यह प्रतिशोध का भाव नहीं है। जिस तरह से कोई युवक उसके तरफ आकर्षित होता है ठीक उसी तरह वह भी आकर्षित होती है। और वह उस प्रगतिगत नैसर्गिक जातिवृत्ति में आनंद लेने की कामना करती है, परंतु अंतिम क्षणों में कुछ ऐसा हो जाता है कि वह चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकती। रक्तिका की यह फ्रिजिडिटी मनोवैज्ञानिक दृष्टया सेक्स्यूअली परवर्जन का परिणाम हे।

यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि रक्तिका के जीवन की इस फ्रिजिडिटी से महानगरीय जीवन से क्या संबंध है। वस्तुतः रक्तिका में उस हादसे की जो घोर मानसिक प्रतिक्रिया होती है जो सैक्स्यूअल परवर्ज़न होता है उसके पीछे महानगरीय जीवन-शैली कारणभूत है। यदि यह रक्तिका किसी गाँव में होती तो इसे एक सामान्य अकस्मात या हादसा समझकर वह उसे भुला देती जैसे मैत्री-पुष्पा के उपन्यास ''इदन्नमम'' की मंदाकिनी के साथ होती है। वस्तुतः

महानगरीय जीवन में उच्चमध्यवर्गीय लोगों में सेक्स को लेकर जो नैतिक मानदण्ड बने हुए हैं उसके कारण बलात्कृत लड़की स्वयं को पतित और अपवित्र समझने लगती है। नैतिकता के ख्यालों के कारण वह कई बार ऐसी बात अपने माता-पिता तथा अभिभावकों, सखियों,मित्रों में भी नहीं कर पाती। रक्तिका यदि ग्रामीण क्षेत्र की होती तो इसकी प्रतिक्रिया रदिया या मंदाकिनी जैसी होती। अतः हम कह सकते हैं कि रक्तिका के जीवन की फ्रिजिडिटी की समस्या महानगरीय परिवेश से किसी न किसी प्रकार से अंतर्ग्रथित है।

युवा अवस्था में सौंदर्य-आकर्षण के कारण उसके जीवन में सोलह युवक आते हैं और सभी उसके जालिम ठंढ़ेपन का शिकार होकर उसके बीच के डायन की उपाधि देकर उसके जीवन से अलग हो जाते हैं। रक्तिका के जीवन में यह जो घटित होता है वह भी महानगरीय जीवन के कारण है। महानगरों की जीवन-शैली में एक प्रकार की उन्मुक्तता दृष्टिगोचर होती है। ग्रामीण या कस्बाय क्षेत्र में, यह संभव नहीं है। महानगरों में होटल, रेस्टोरा, कॉलेज, कैम्पस, बाग आदि के कारण युवक-युवतियों को एक-दूसरे के संपर्क में आने की सुविधाएँ अधिक उपलब्ध होती हैं। दूसरे महानगरीय जीवन अरण्य में दूसरे लोगों द्वारा पहचाने जाने के खतरे भी यहाँ कम होते हैं। शैलेष मटियानी कृत "आकाश कितना अनंत है" में स्त्रियों के जातीय जीवन को लेकर चलनेवाला गोसिपिज़म पूर बहार में दिखाई पड़ता है। कारण यही है कि उसका परिवेश अलमोड़े जैसे छोटे शहर का है। दिल्ली , मुम्बई, कलकत्ता, मद्रास जैसे महानगरों में लोग क्या करते हैं। उसकी ज्यादा कोई परवाह करता नहीं है।

रक्तिा की यह फ्रिज़िडिटी का अंत अंततः दिवाकर नाम के विवाहित युवक द्वारा होता है। विवाहित होने के कारण दिवाकर में धीरता का गुण है। रक्तिका जैसी युवती को उसकी मानसिक रुग्णता को दूर करने के लिए धैर्य की आवश्यकता रहती है। दिवाकर में वह धैर्यता है। दूसरे अविवाहित युवक जहाँ अंतिम परिणति के क्षणों में अपने धैर्य को खो बैठते हैं, वहाँ दिवाकर विवाहित होने के कारण धैर्य, प्रेम से काम लेता है और अंततः रक्तिका की उस शारीरिक रुग्णता को दूर कर देता है। परंतु तब रक्तिका स्वयं

दिवाकर के जीवन से हट जाती है , क्योंकि एक नारी होकर दूसरी नारी के जीवन को अभिसप्त करना वह नहीं चाहती। रक्तिका की यह सोच भी महानगरीय जीवन में पली-बढ़ी , सुशिक्षित युवती की सोच है, जो न्याय और विवेक द्वारा संचालित होती है।

००

मछली मरी हुई : ---

महानगरीय जीवन के संदर्भ में राजकमल चौधरी का लेखन काफी चर्चित रहा है। ''शहर था'', ''शहर नहीं था'', ''देहगाथा तथा बीस रानियों वाला बाईस्कॉप'', जैसे उनके उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य में काफी चर्चित रहे हैं। ''मछली मरी हुई'' उपन्यास का वस्तु महानगरीय जीवन की आपाधापी, दौड़धूप, यांत्रिकता,आक्रोश, यौनाचार, वैयक्तिक कुण्ठाओं तथा नैतिक निषेधों को पूर्णरूपेण रेखांकित करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसमें चौधरी जी ने महानगरीय जीवन के शिक्षा-दीक्षा, तड़क-भड़क, सभ्यता, पार्टियों तथा इन सबमें से झाँकते हुए जीवन के खोखलेपन जैसे आयामों को एक व्यंग्य तिक्तता के साथ उभारा है। राजकमल चौधरी स्वातंत्र्योत्तर भारत की संक्रांतिकालीन दौर के लेखक हैं। यह एक ऐसा दौर है, जिसमें महानगरीय परिवेश में सामाजिक, नैतिक, आर्थिक मानदण्ड टूक-टूक होकर बिखर रहे हैं, दूसरी तरफ नए मूल्यों का उद्भव नहीं हो रहा है। उपन्यास में मुख्यतया कलकत्ता का वर्णन आता है, परंतु उसका नायक निर्मल पद्मावत पूरी दुनिया का भ्रमण कर चुका है। उसमें कराची, लाहौर, सियालकोट, बम्बई, टोकियो, हांगकांग, पैकिंग, मास्कोवारसा, बुडापेस्ट, बर्लिन, वियेना, पेरिस प्रभृति महानगरों के संदर्भ यदाकदा मिलते हैं। ''स्काई-स्केपर'',''हू-इज़-हू इन कैलकटा बिजनेस-इण्डस्ट्री'',''कल्याणी-मेन्शन, ड्रम और आर्कडियन की वहशी धुन, सिलवाना मैनगानो , सोफिया लोरेन, माडलिंग, कालगर्ल, ब्लू-फिल्मों, पोर्ट, शेरी, वारमुथ, शेर्राय रम, जैसी शराबों के नाम स्केलेटन, लिस्वियन जैसे व्यक्तिवाची, जातिवाची शब्द उपन्यास के बाहरी महानगरीय वातावरण को रूपायित करते हैं , वहाँ उसकी कथावस्तु महानगरीय जीवन के

आन्तरिक खोखलेपन को उकेरता हुआ प्रतीत होता है ।

लेखक ने उपन्यास के तेरहवें परिच्छेद में समलैंगिक स्त्री यौनाचार (लिस्बियनिज़म) पर एक संक्षिप्त विवरण दिया है । [१५] प्रस्तुत विषय पर लिखा गया कदाचित यह प्रथम उपन्यास है । अभी कुछ वर्ष पूर्व दीपा मेहता की एक फिल्म-"फायर" बहुत ही चर्चास्पद रही थी । दीपा महेता ने इस फिल्म में दो स्त्रियों के बीच के स्मलैंगिक यौनाचार को ही चित्रित किया था, जिस पर काफी उहापोह हुआ था । यह ध्यान रहे कि इस विषय पर मछली मरी हुई उपन्यास में लगभग ३० वर्ष पूर्व लिख चुके थे । इसमत चुकताई की कहानी "रजाई" भी इसी विषय पर लिखी हुई थी । बहुत से लोग इस प्रकार के लेखन की गणना "कोर्नयोग्राफ़िक" लिट्रेचर के अंतर्गत करते हैं, परंतु यह समीचीन नहीं है, क्योंकि मनुष्य के अंतर्गत जीवन की यह भी एक सच्चाई है और यदि उसे कलात्मक निरपेक्षता के साथ प्रस्तुत किया जाए तो उसे कोर्नियोग्राफिक नहीं कहा जा सकता । बहुत कम सही, समलैंगिक यौनाचार महानगरीय जीवन का एक अंतर्गत पक्ष उद्घाटित करता है ऐसा कह सकते हैं । "पिछली बड़ी लड़ाई के बाद कलकत्ता शहरमें नई पीढ़ी के व्यापारियों की एक जमात एक सुबह सोकर उठने के बाद अचानक पूंजी, प्रभुत्व और उद्योग-धन्धों की बन्द तिजोरियों खोलकर, नया से नया व्यापार करने के लिए चौरंगी, डलहौजी-स्क वायर, माहत्मा गाँधी रोड, धरमतल्ला और पुरानी क्लाइव स्ट्रीट में, अमरीकी शैली के ऊँचे दफ्तरों में बैठ गई ।"[१६]

प्रस्तुत उपन्यास का नायक निर्मल पद्मावत इसी जमात का एक व्यापारी था । निर्मल पद्मावत के पिता बचपन में मर गये थे । पिता की मृत्यु के बाद माँ मकान आदि को बेचकर एक ड्राईवर के साथ भाग जाती है । इस प्रकार निर्मल बेघर ओर असाहय हो जाता है । बेघर होने की यह चेतना उसके दिलोदिमाग पर ऐसे हावी हो जाती है कि उसका सारा ध्यान पैसे कमाने की ओर चला जाता है । और कलकत्ते के प्रसिद्ध उद्योगपति प्रभासचंद्र नियोगी के साथ काम करते हुए वह स्वयं एक बड़ा उद्योगपति हो जाता है । और "कल्याणी मेन्शन" नामक एक मल्टी स्ट्रोयल कोम्पलेक्ष का मालिक हो जाता है । बचपन में बेघर होते की भावना से उत्पन्न जो असाधारणता पेदा हुई थी,

कल्याणी मेन्शन के निर्माण के साथ ही वह समाप्त हो जाती, परंतु न्यूयार्क में उसकी मुलाकात कल्याणी से होती है। कल्याणी एक दिशाहारा पथभ्रष्ट युवति है। निर्मल एक बार उसकी सहायता करता है। कृतज्ञतावश वह निर्मल को अपना शरीर देना चाहती थी, परंतु ऐन वक्त पर निर्मल का ध्यान कमरे में रखे "स्केलेटन" (हाड़पिंजर) और उसके दुशप्रभावों के कारण वह पहाड़-सा आदमी ठण्ढा पड़ जाता है। इस बात को लेकर कल्याणी निर्मल को तिरस्कृत करती है, फलतः वह नपुंसक हो जाता है। निर्मल की यह नपुंसकता मनोवैज्ञानिक है।

कल्याणी, डॉ. रधुवंश से विवाह करके प्रिया नामक एक बच्ची को जन्म देकर काल-कवलित हो जाती है। डॉ. रधुवंश को निर्मल पद्मावत की "केस हिस्ट्री" ज्ञात है। एक वैज्ञानिक होने के नाते वे इस बात को जानते है कि निर्मल की यह असाधारणता कल्याणी ही दूर कर सकती थी परंतु कल्याणी तो अब इस दुनिया में नहीं है। अतः उसकी बेटी "प्रिया" उसे पुनः साधारण बना सकती है। प्रिया भी एक असाधारण (ubnormal) युवति है, वह लिस्बियन है। शीरी और प्रिया के बीच लम्बे अरसे से समलैंगिक व्यवहार चल रहा था। शीरी का पति विश्वजीत महेता शारीरिक दृष्टि से अशक्त एक ऐसा बूढ़ा था। अतः वह निर्मल से संबंध जोड़ती है। परंतु निर्मल भी अपने नपुंसकता के कारण शारीरिक सुख न दे पाता था। एक पार्टी में प्रिया निर्मल के नपुंसकता की ओर इशारा करती है तो तब वह बौखला पड़ता है। "मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि असाधारण पुरूष कुण्ठाओं के वशीभूत होकर नपुंसक हो जाता है। वास्तव में वह नपुंसक होता नहीं। किसी परिस्थिति-विशेष में पड़कर उसका पौरूष फूट पड़ता है।" [१७] निर्मल के साथ बिलकुल वही होता है। प्रिया के कारण उसका पौरूष फूट पड़ता है। पशु की तरह उस पर तूट पड़ता है। इस प्रकार वह एक बार नहीं कई बार सफल बलात्कार करता है, उसका पुंसत्व लौट आता है। प्रिया भी पुरूष के संभोग पाकर साधारण हो जाती है और डॉ. रधुवंश को इस बात की प्रसन्नता है कि आखिर प्रिया ने कल्याणी के काम को अंजाम दिया। वह स्वयं भी एक साधारण स्त्री बन सकी। निर्मल पद्मावत को व्यापार में घाटा जाता है। परंतु "कल्याणी

मेन्शन'' को किसी तरह बचा लेता है। वह कल्याणी मेन्शन को प्रिया के नाम कर देता है। शीरी महेता भी निर्मल पद्मावत को पाकर फिर से जी उठती है। निर्मल और कल्याणी का परिवेश कल्याणी के जीवन से परिचित होते हुए भी डॉ. रधुवंश का विवाह करना, कल्याणी और निर्मल की केस हिस्ट्री जानता तथा यह आशा रखता कि कल्याणी की पुत्री प्रिया निर्मल को साधारण बना सकती है और ऐसा होने पर डॉ. रधुवंश का प्रसन्न होना यह सब होना सामान्य या कस्वायै जीवन में संभव नहीं है। उपन्यास में वर्णित घटनाएँ और परिवेश भाषा और प्रतीक महानगरीय परिवेश के अनुरूप है।

००

पचपन खम्भे लाल दीवारें (उषा प्रियंवदा) : ---

आधुनकि महिला लेखिकाओं में उषा-प्रियंवदा का एक विशिष्ट स्थान है। एक बहुश्रुत एवं जागरूक लेखिका होन के कारण उनके लेखन में सामाजिक तथा वैश्विक परिवेश में स्त्रियों के बदलते-बिगड़ते-सँवरते अनेकानेक रूपों का चित्रण हुआ है। पचपन खम्भे लाल दीवारें उषा जी का प्रथम उपन्यास है। उसकी नायिका सुषमा दिल्ली में एक कॉलेज में व्याख्याता है। साथ ही साथ गर्ल्स होस्टेल की वार्डन भी है। वैसे सुषमा का घर-परिवार दिल्ली से दूर उत्तर-प्रदेश के किसी कस्बायै तब्बकों में पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने नारी शोषण के एक नए कोण को उकेरा है। नारी का शोषण तो प्रत्येक युग में होता रहा है। आधुनिक युग में नारी जहाँ पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर हुई है वहाँ उसे आत्मनिर्भरता का मूल्य भी चुकाना पड़ रहा है। आधुनिक शिक्षित नारी के शोषण का प्रारंभ नगरों तथा महानगरों में शुरू हो गया है। अनेक परिवारों में परिवार की बड़ी लड़की को कई बार पूरे परिवार का आर्थिक उत्तरदायित्व वहन करना पड़ता है। अतएव अविवाहित जीवन की विभीषिका को ढोने के लिए वह विवश हो जाती है।

हमारा समाज अभी मूल्यों के संक्रमणकाल से गुज़र रहा है। अभी हमारे यहाँ वह स्थिति नहीं आयी है कि लड़की विवाह के उपरांत अपने माँ-बाप या भाई-बहनों को आर्थिक सहायता करे। विवाहित लड़की नौकरी

करती है तो उसकी कमाई पर उसके ससुरालवालों का ही अधिकार रहता है। अतः यदि लड़की घर-परिवार की बड़ी लड़की है, पिता निवृत या किसी असाध्य रोग से ग्रसित है, भाई-बहन छोटे या बेकार हैं, इन स्थितियों में अपने घर परिवार के अस्तित्व के लिए उसे खुद की भावनाओं को कुर्बान करना पड़ता है। वह नौकरी करके सबको पालती है, पर इसके लिए उसे अविवाहित रहना पड़ता है।

पश्चिमी देशों में ऐसी स्थितियों में यदि कोई लड़की नौकरी करती है तो या तो विवाह के बाद भी वह अपने घर-परिवारवालों को सहायता करती हैं। या फिर अविवाहित रहना पड़े तो उन स्थितियों में माता-पिता तथा उसके परिवारवाले उतनी स्वतंत्रता देते हैं, जिसमें वह अपनी यौन इच्छाओं को संतुष्ट कर सके। किंतु हमारे यहाँ जैसा कि पहले निर्देश किया गया है कि मूल्य संक्रमण की स्थिति चल रही है, जिसमें माँ-बाप को बेटी की कमाई से तो परहेज़ नहीं है, किंतु यौन-स्वतंत्रता को अभी वे नैतिकता के मान-दण्डों से देखने के आदि हैं, जिसे हम शशिप्रभा शास्त्री के "नावें" उपन्यास में भी दृष्टिगत कर सकते हैं।

ऊपर निर्दिष्ट स्थितियों में लड़की यदि नौकरी करके अपने परिवार को पालती-पोषती है, तो उसे एक मानवीय-मूल्य कहा जा सकता है। पर लड़की नौकरी करती है, कमाऊ है, अतः शादी कर देने से कमाई का यह ज़रिया समाप्त हो सकता है, वह सोचते हुए उसकी शादी की बात छोड़ देना या भीतर ही भीतर यह सोचे कि वह विवाह न करे तो अच्छा तो ऐसे दृष्टिकोण को अमानवीय, शोषणोन्मुखी ही कहा जाएगा।

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुषमा को ऊपर निदृष्ट स्थितियों से ही गुज़रना पड़ता है। अपने घर-परिवार के उत्तरदायित्वों के रहते पहले तो वह अपनी इच्छाओं का गला घोंटते हुए आजीवन अविवाहित रहने का फैंसला करती है। उसके माँ-बाप की भी इसमें एक प्रकार से मौन-सम्मति है। इसके पीछे इनकी लाचार-विवश आर्थिक स्थिति ही ज़िम्मेदार है। किंतु सुषमा की मौसी हमेशा चाहती रही है कि सुषमा विवाह करके एक गृहिणी का जीवन व्यतीत करे। अतः उनके ही प्रयत्न से सुषमा के जीवन में नील का प्रवेश

होता है। सुषमा भी नील को चाहने लगती है। नील और सुषमा के पारस्परिक प्रेमाकर्षण के कुछ महिने स्वप्न की भाँति व्यतीत हो जाते हैं। यद्यपि सुषमा एक गंभीर ओर संभ्रांत किस्म की लड़की है। तथापि यौन के ज्वार में नील को लेकर कुछ समय के लिए मानो वह अँधी हो जाती है। किंतु कुछ समय में ही वास्तविकता की भयंकर विभीषिका सामने आकर खड़ी हो जाती है। सुषमा और नील के संबंध कॉलेज परिसर में अध्यापिकाओं और छात्राओं के बीच गोशिप के परिस्तर पर चर्चित्त होते रहते हैं। फलतः कॉलेज के प्राचार्य एक दिन सुषमा को साफ-साफ कह देती है। सुषमा के सामने कॉलेज की नौकरी या नील दो में से किसी एक को छोड़ने के विकल्प के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं रहता, लिहाज़ा सुषमा हमेशा के लिए नील को छोड़ने का फैंसला कर लेती है। इस संदर्भ में डॉ. घनश्याम मधुप की टिप्पणी है-"उषा प्रियंवदा जी का रचनाकार आधुनिक होते हुए भी पुरातनपंथी है। कथ्य की दृष्टि से उनकी कथा-कृतियाँ प्रेमचंद-युग से आगे नहीं कही जा सकती। वे मूलतः भारतीय होने के कारण कथा के अंत में एक कृत्रिम आदर्शवाद को स्वीकार करती हैं।"[१८]

किंतु हम Dr.मधुप के उपर्युक्त अभिमत से सहमत नहीं हो सकते क्योंकि सुषमा द्वारा लिया गया यह निर्णय हमारे मध्यवर्गीय समाज का सच्चा, प्रामाणिक आंकलन मात्र है। इस संदर्भ में डॉ. पारूकांत देसाई ने सुषमा की स्थिति को स्पष्ट करते हुए रेखांकित किया है- "आज भी समाज में सुषमा जैसी अनेक नारियाँ मिलती हैं, जो परिवार-प्रतिबद्धता में अपने वैयक्तिक सुख का बलिदान दे देती हैं। तो क्या अधिक "फोरवर्ड" कहलाने के लोभ में लेखिका का वैसा कहना योग्य होता ? और तब क्या समाज के यथार्थ की रक्षा हो पाती ? जब समाज में ऐसी नारियाँ मिलती हैं तो उपन्यास में आएंगी ही, इसमें प्रेमचंद युग से आगे-पीछे आने का सवाल ही कहाँ आता है ? वस्तुतः उपन्यास में जो स्थितियाँ अंकित हुई हैं, उनमें सुषमा के लिए कदाचित अन्य कोई विकल्प नहीं है। नील से विवाह करके वह नौकरी में रह सकती थी, पर यह बात उसके जैसी आधुनिक व शिक्षिता नारी के स्वाभिमान के प्रतिकूल जाती। अतः सुषमा की परिणति कोई आदर्शवादी दृष्टि न होकर यथार्थवादी जीवन-दृष्टि

का ही परिणाम है।''[१९]

आदर्शवादी दृष्टि से सुषमा यदि ऐसा करती तो उसक मन में दर्प या गौरव की भावना होती, किंतु ऐसा नहीं है। सुषमा अपने इस निर्णय के लिए भीतर से बहुत दुःखी है। सुषमा के अंतर्मन का यह संत्रास उसके अपने कथन में स्पष्ट हो जाता है। वह अपनी एक सहेली मीनाक्षी से कहती है- ''पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पालूँगी.. उसे सीने से लगा रखूँगी... आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इसी कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी। कॉलेज के इस पचपन खम्बे की तरह स्थिर, अचल।'' [२०]

अतः हम देख सकते हैं कि सुषमा भावुकता के स्थान पर विवेक का ही वरण करती है। यहाँ हम डॉ. कुँवर नारायण के निम्नलिखित अभिमत से सहमत हो सकते हैं कि- ''किसी भी स्तर पर जीती हुए वे (उषा जी के नारी पात्र) विवेक के तरफदार हैं। मानो लेखिका इस तस्थ के प्रति बराबर सचेत हैं कि विकासशील जीवन-मूल्य मनुष्य की इच्छा-क्षमता से अधिक उसकी चिंतन-क्षमता पर निर्भर करते हैं।''[२१]

प्रस्तुत उपन्यास में संस्कृत की रौक्यटर मिस शास्त्री का भी चित्रण हुआ है। मिस शास्त्री भी किसी कारण से अविवाहित रह जाती हैं। फलतः आनंद-उपलब्धि का कोई अन्य मार्ग न पाकर जीवन के और संसार के प्रति वह शुष्क और कटु होती जा रही है। इसके कारण ही उसका स्वभाव सैडिस्ट हो गया है। छात्राओं तथा अध्यापिकाओं को लेकर तरह-तरह की गोशिप फैलाने से उनके इस सैडिस्ट मनोवृति संतुष्ट होती है। वह छिप-छिपकर छात्राओं के कमरों में भी झाँकती है तथा उनके पत्रों को भी पढ़ती है। यहाॅ महानगरीय जीवन का एक विद्रूप आयाम मिस शास्त्री के रूप में हमारे सामने आता है।

सुषमा के जीवन की उपर्युक्त समस्या वस्तुतः देखा जाय तो महानगरीय जीवन की ही समस्या है, क्योंकि सुषमा पढ़ लिखकर यदि दिल्ली जैसे महानगर में न आती तो कदाचित यह सारी बातें उपस्थित ही न होती।

००

रूकोगी नहीं राधिका : ---

रूकोगी नहीं राधिका उषा प्रियवंदा का महानगरीय जीवन-बोध को व्याख्यायित करने वाला उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास की राधिका उच्चमध्यवर्ग या उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है । उपन्यास की कुल कथा इतनी ही है कि राधिका के पिता एक प्रोफेसर हैं । वे विद्वान, सुशील और विचारवान व्यक्ति हैं, उनके व्यक्तित्व में धीरता और गंभीरता के दर्शन होते हैं । जब उनकी पत्नी का देहावसान हो जाता है तब बच्चे छोटे थे, अतः वे दूसरा विवाह नहीं करते । बच्चों के युवा हो जाने पर वे अपनी एक समानधर्मा सहअध्यापिका विद्या नामक प्रौढ़ महिला से विवाह कर लेते हैं । राधिका में, अपने पिता को लेकर पितृ ''बद्धत्व ग्रंथि''(Father Fixation) मिलती है । वह अपने पिता को संसार का एक आदर्श पुरूष मानती है । पिता द्वारा विवाह कर लेने पर उसकी इस ग्रंथि को ठेस पहुँचती है और, उसमें एक दूसरी ग्रंथि ''इलेक्ट्रा काम्पलेक्स''- का निर्माण होता है । राधिका अपने पिता के दूसरे विवाह को झेल नहीं पाती है, और अपने भाई ''बढ़दा'' के यहाँ चली जाती है । विद्या को ''मम्मी'' न कहकर विद्या से संबोधित करती है । उसमें भी उसका वही भाव झलकता है । उसके बाद राधिका अपने पिता को मानसिक आघात पहुँचाने हेतु ''डैन'' नामक एक विदेशी पुरूष के साथ यौरप भाग जाती है । और ऐथन्स, रोम, लंडन, शिकागो आदि महानगरो का भ्रमण करती है । डैन के साथ भी सुखी वैवाहिक जीवन नहीं बिता पाती । क्योंकि डैन की उम्र राधिका से कुछ अधिक थी । राधिका अलड़, नादान युवति थी जबकि डैन प्रौढ़ गंभीर पुरूष था । राधिका का डैन के साथ भाग जाना स्वस्थ चित्त से किया गया निर्णय नहीं था । बल्कि पिता को मानसिक आघात पहुँचाने की अंतःवृति का ही परिणाम था । दूसरे शब्दों में कहें तो वह क्रिया नहीं, प्रतिक्रिया थी । विदेश में राधिका मनीष नामक एक युवक को मिलती है । मनीष में एक चुम्बकीय आकर्षण है । वह युवतियों को आकर्षित करता है । राधिका भी उसके व्यक्तित्व से आकर्षित होती है, किंतु डैन के संबंधो के साथ उतनी नायान नहीं रही थी । अतः थोड़े ही समय में मनीष के 'Play boy'टाईप के चरित्र को समझ जाती है कि मनीष एक अच्छा दोस्त बन सकता है, एक

अच्छा पति नहीं। क्योंकि उसके जीवन में अनेक युवतियाँ आई थीं। किसी एक का होकर रहना यह उसके स्वभाव में नहीं था। अतः विदेश से लौटने पर दिल्ली में अक्षय नामक एक युवक से वह विवाह-सूत्र में बँधना चाहती है। अक्षय राधिका के व्यक्तित्व से प्रभावित तो है परंतु राधिका के चरित्र को लेकर उसके मन में शंकाएँ पैदा होतीं हैं। उसका मध्यकालीन पुरूषवादी मानस पत्नी के रूप में किसी अविवाहित लड़की को ही स्वीकृत करता है। राधिका सुंदर, शिक्षित, स्मार्ट है तथापि उसका आंतरिक या अचेतनमन उसे एक ''जुठन'' या ''उच्छिष्ट'' के रूप में मानता है। राधिका को लेकर वह पशोपेश की स्थिति में पड़ जाता है, और किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पाता। जिस तरह से राधिका मनीष के बारे में सोचती है, कुछ-कुछ वहीं स्थिति अक्षय के बारे में भी है। वस्तुतः इसे हमारे समाज की विडम्बना ही समझना चाहिए कि हमारे युवक आधुनिक और बोल्ड कही जाने वाली महिलाओं के प्रति आकर्षित तो होते हैं उनके साथ यौन संबंध जोड़ने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती परंतु वे उसे पत्नी रूप में स्वीकार नहीं करते ''अंधेरे बंद कमरे'' के हरबंस की भी यही विडम्बना थी। प्रस्तुत उपन्यास के अक्षय की भी यही समस्या है। आधुनिका दोस्त या प्रेमिका बन सकती है, पत्नी नहीं।

अक्षय राधिका को लेकर किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पा रहा था। उन्हीं दिनों में राधिका की मुलाकात पुनः मनीष से होती है। वह उसके सामने दक्षिण भारत के प्रवास की योजना बनाता है। राधिका उसके साथ जाना नहीं चाहती थी, किंतु उन्हीं दिनों में उसके पिता पुनः राधिका के सामने अपने साथ रहने का प्रस्ताव रखते हैं। इसी बीच में विद्या नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर ली है और राधिका के पिता पुनः अकेले हो गए हैं। अतः अपने पिता को एक दूसरा मानसिक आघात देने के लिए मनीष के साथ चल पड़ती है। राधिका का डैन के साथ भाग जाना एक गलत निर्णय था, ठीक उसी प्रकार मनीष के साथ दक्षिण भारत के प्रवास की योजना बनाना भी गलत हो सकता है। उसके कारण राधिका पुनः भटकनवाली स्थिति में आ सकती है।

प्रस्तुत उपन्यास पूर्णतः मानसिक समस्याओं और मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों पर आधारित है। यहाँ कोई आर्थिक समस्याओं या पारिवारिक समस्याओं का

दबाव नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि उपन्यास का परिवेश पूर्णरूपेण महानगरीय प्रकृति के अनुरूप है। ग्रामीण या कस्बायै वातावरण में अन्य आर्थिक, सामाजिक पारिवारिक दबाव इतने होते हैं कि मनोग्रंथियों के पनपने की कोई गुंजाइश रहती नहीं है। दूसरे, राधिका के घर का जो वातावरण है, राधिका का अपने पिता के साथ जो जो खुला बर्ताव है, भाई-भाभी के साथ जो खुला व्यवाहर है। यह सब महानगरीय जीवन के आयाम हैं। ग्रामीण या कस्बायै वातावरण में लड़की की वह बौद्धिक कक्षा नहीं होती जैसी बौद्धिक कक्षा राधिका की पायी जाती है। ग्रामीण या कस्बायै परिवार की लड़की यदि अपने पिता से किन्हीं कारण से रूठ जाती है तो थोड़े दिन रो-धोकर या भीतर ही भीतर घुटकर उसके गम को भुलाने लगती है, परंतु राधिका जिस प्रकार डेनियल पिटरसन के साथ भाग जाती है, उस प्रकार की स्थिति का निर्माण नहीं होगा। इसका यह अर्थ यह नहीं है कि ग्रार्मीण या कस्बायै परिवार में लड़कियाँ भागकर शादी नहीं करती। बाला दुबे कृत उपन्यास "मकान दर मकान" में किस्नौ नामक लड़की द्वारका नामक लड़के से प्रेम करती है, परंतु उन दोनों के विवाह में रूकावट आती है तो वे शहर भागकर शादी कर लेती है। यहाँ राधिका के सामने इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। वस्तुतः इसे हम उच्चवर्गीय लोगों के चोंचले भी कह सकते हैं। प्रथमतः ग्रामीण या कस्बायै वातावरण में बालिक हो जाने पर लड़की अपने बड़े भाईयों या पिता से कुछ अलग-अलग ही रहती है। अतः वहाँ पितृ बद्धन्व ग्रंथि (Father Fixation) का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे, ग्रामीण या कस्बौ परिवेश में लड़की को न राधिका जितनी ही शिक्षा दी जाती है, न वह उस उम्र तक अविवाहित रहती है। वहाँ तो अठारह-बीस होते ही लड़की के हाथ पीले करने की बात चलती है। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास में निरूपित स्थितियाँ पूर्णतयः महानगरीय शैली के अनुरूप है।

उपन्यास में निरूपित बौद्धिक वातावरण भी महानगरीय जीवन सभा-सोसायटी, सेमिनार, संगोष्ठियाँ, Womens Club, किटी पार्टियाँ, अँग्रेजी का व्यामोह, पाश्चात्य जीवन पद्धतियों का अनुकरण imported चीज़ वस्तुओं का प्रदर्शन ये सारे आयाम महानगरीय जीवन पद्धति और जीवन-शैली को

रेखांकित करनेवाले हैं। राधिका की भाभी राधिका को जो महत्व देती है उसके पीछे भाभी नंनद के संबंधों की उष्मा नहीं अपितु एक दिखावा करने की प्रवृति है। फॉरिन रीटर्न ननद के कारण उसके अहं की संतुष्टि होती है। उपन्यास में एक उत्तर भारतीय पात्र है। प्रवीण जिसे इस बात का अभिमान है कि उसके बच्चों को मातृभाषा ठीक से आती नहीं है क्योंकि वे शुरू से ही मिश्नरी अँग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में पढ़ें हैं। इस प्रकार महानगरीय जीवन में जो जीवनर्गत्त बाह्याडम्बर और प्रदर्शन वृति है उसे भी लेखिका ने कलात्मक ढंग से उकेरा है।

००

प्रेम अपवित्र नदी : ---

प्रेम अपवित्र नदी लक्ष्मीनारायण का विस्तृत समय-फलक को लेकर चलनेवाला उपन्यास है। इसमें दिल्ली के ''कपूरवाले'' परिवार की तीन पीढ़ियों की कथा को लेखक ने निरूपित किया है। सन् १८५७ के गदर के बाद से लेकर स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग तक की कथा को लेखक ने लिया है। दिल्ली के चाँदनी चौक में आए हुए नीलकटरा का ''कपूरवाला''परिवार रूढ़िचुस्त, परंपरावादी, धार्मिक (अपने रूढ़ अर्थ में) एवं राजभक्त व्यापारी परिवार है। राजभक्त इस अर्थ में कि अँग्रेजों के ज़माने में कपूरवाला परिवार अँग्रेज भक्त था और आजादी के बाद वह काँग्रेस-भक्त हो जाता है। सत्ता के साथ रहना यह प्रायः व्यापारिक प्रतिष्ठानों की विवशता होती है, जिसे राजभक्ति कहकर गौरवांतित करने का प्रयत्न होता है। धन-प्राप्ति तथा उसके लिए नवीन व्यावसायिक तरीकों की खोज ही उनके जीवन का परम कर्तव्य हुआ करता है। हीराचंदकपूर का पुत्र कुमार कपूरवालों की परंपरा को आगे ही नहीं बढ़ाता बल्कि उसे अत्याधुनिक रूप भी देता है। कनाट लेस में बाराखम्भा रोड़ पर एक शानदार कोठी बनवाता है।

उपन्यास का प्रारंभ कुछ इस प्रकार होता है कि ''कपूरवाला''परिवार का सूरज कपूर अपनी पत्नी ब्रजरानी को लेकर हरिद्वार जाता है। अपने परिवार की कुलरीति निभाने के लिए हरिद्वार महावीर पण्डे के वहाँ जाता है।

उनके परिवार में यह रीति पीढ़ि-दर-पीढ़ि चली आयी है कि कपूरवाला परिवार का सदस्य विवाह के बाद एक बार हरिद्वार जाकर पण्डा परिवार का अपनी पत्नी दान स्वरूप दे देते हैं। फिर वे लोग बदले में कुछ रकम लेकर स्त्री को वापिस उस पति को सौंप देते हैं। यह कुलरीति बरसों से चली आयी है उसमें काई मीन-मेख नहीं होता, परंतु अबकी बार कुछ अघटित घटता है। महावीर पण्डे की नीयत में खोट आ जाती है। सूरजकपूर की पत्नी ब्रजरानी देवी के सौंदर्य से अभिभूत महावीर किसी भी मूल्य पर ब्रजरानी को वापिस नहीं करता। निराश होकर सूरज कपूर दिल्ली लौट आता है। शुरू-शुरू में अपने मन को व्यवसाय में लगाने की भरकस चेष्टा करता है। परंतु बार-बार उसकी चेतना में यह बात हथोड़े की तरह चोट करती है कि वह अपनी पत्नी ब्रजरानी को नहीं ला सका उसमें उसकी कायरता भी उतनी ही उत्तरदायी है। अतः मन ही मन में अपनी कायरता पर पश्चाताप करता तपैदिक का शिकार होकर वह मर जाता है।

वस्तुतः देखा जाय तो वह कुलरीति का प्रश्न था, परंपरा का प्रश्न था और परंपरा के कुछ नीति नियक बने हुए थे, जिन नीति नियमों को महावीर पण्डे ने तोड़ा था। अतः वह कपूरवाला परिवार का प्रथम उत्तरदायित्व होना चाहिए था, सूरजकपूर अपनी जिम्मेदार पर ब्रजरानी को नहीं ले गया था। कपूरवाला परिवार की परंपरा निभाने के लिए ले गया था। अतः यहाँ सचमुच कपूरवाला परिवार की नैतिक प्रतिष्ठा दाव पर लगी हुई थी परंतु केवल पिहानीवली (मालिक हीराचंद कपूर की धर्मपत्नी) को छोड़कर कपूरवाला परिवार की किसी अन्य सदस्य पर जू भी नहीं रेंगती है। केवल पिहानीवाली इस दिशा में प्रयत्नशील और गंभीर है, वह ब्रजरानी को पुनः लाने का प्रयत्न नौकर रमहल्ला और पंचानन चोर के द्वारा करती है।

महावीर पण्डा ब्रजरानी को मनाने की भरसक चेष्टा करता है, किंतु वह उसकी तरफ से खिंची हुई रहती है, उन्हीं दिनों में ब्रजरानी का परिचय नन्दिनी नामक एक स्त्री से होती है जो एक फरार क्रान्तिकारी के प्रभाव में थी। एक रात महावीर की हवेली पर डाका पड़ता है और डाकुओं का सरदार ब्रजरानी देवी को अपने साथ ले जाता है। डाकुओं का सरदार ब्रजरानी के साथ बहुत

भद्रता और शालीनता से पेश आता है। उसके इस सद्व्यवहार से प्रभावित ब्रजरानी उसे समर्पित हो जाती है, परंतु बाद में सरदार की पत्नी के रुख को देखकर वह पुनः महावीर पण्डा के पास चली जाती है। उस समय पण्डा रोगग्रस्त था और जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था। वह अपनी समूची संपत्ति ब्रजरानी के नाम कर देता है। इस सम्पति में से कुछ सम्पति ब्रजरानी गंगा और पंचानत चोर के नाम कर देती है तथा दस हज़ार रुपये अपने पुत्र विष्णुपद को देकर वह गंगा में डूबकर आत्महत्या कर लेती है।

विष्णुपद का जन्म ब्रजरानी हरिद्वार जाती है उसके पूर्व हुआ था। अतः विष्णुपद सदा अपनी माँ के लिए व्याकुल रहता है। कपूरवालों की झूठी मान मर्यादा और झूठी कुल परंपरा के कारण उसे अपनी माँ को खोना पड़ा था। अतः वह कपूरवालों से घृणा करने लगता है। पढ़ने के लिए उसे इंग्लैण्ड भेजा जाता है। इंग्लैण्ड उन दिनों क्रान्तिकारी विचारों का केन्द्र था। विष्णुपद वहाँ से जब इन क्रांतिकारी विचारों को लेकर आता है तब मानो कपूरवालों पर वज्राघात-सा होता है। वह "नवभारत" नामक पत्र चलाता है। उस पत्र के द्वारा अपने विचारों को अभिव्यक्ति देता है।

दूसरी ओर हीराचंद के पुत्र कुमार की पत्नी शिवानी भी विष्णुपद के पद्चिन्हों पर निकलती है। शिवानी शिक्षित ही नहीं संगीत, साहित्य एवं कला की मर्मज्ञ भी है, वह साहित्य की जीव है। उसे कपूरवाला परिवार की व्यावसायिक वृति से घिन है। अतः वह अपने पति से विद्रोह करती है। कुमार से तलाक लेकर कुछ समय वह देश सेवा के कार्य में जुट जाती है। विष्णुपद और शिवानी के रास्ते समान थे। उनका चिंतन दो समान-धर्मी व्यक्तियों का चिंतन था। अतः शिवानी अंततः विष्णुपद से विवाह कर लेती है तथा वे दोनों मिलकर देश-सेवा के कार्य में जुट जाते हैं। अपनी देश-सेवा के कारण विष्णुपद संसद-सदस्य के रूप में चुन लिया जाता है। आज़ादी के बाद हमारी देश की राजनीति किस प्रकार का मोड़ लेती है उसका एक चित्र भी हमें यहाँ प्राप्त होता है। किस प्रकार धर्म और राजकारण को मिलाकर देश की जनता को पथ-भ्रष्ट किया जाता है उसका एक प्रारंभिक सूत्र यहाँ मिलता है। विष्णुपद को चुनाव में हराने के लिए पंचानन नामक चोर को देश-विदेश घुमाकर स्वामी

मरूतानन्द के रूप में प्रस्थापित किया जाता है । परंतु विष्णुपद पंचानन का पर्दाफाश करने में सफल हो जाता है । अतः वह चुनाव तो जीत जाता है परंतु स्वामी मरूतानंद का प्रभाव हमारी धर्मप्राण जनता (?) पर इतना बढ जाता है कि विष्णुपद को अनेक शहरों की अदालतों में खाक छाननी पड़ती है ।

कुमार और शिवानी का पुत्र विजय पहले के कपूरवाला परिवार के नकशे कदमों पर चलता हैं परंतु बाद में वह लिलियन नामक एक विदेशी युवति के प्रेम में पागल होकर वह हिप्पी हो जाता है और अंत में गरीब बस्तियों में काम करते करते लिलियन को पा लेते है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जहाँ तक महानगरीय परिवेश का संबंध है उसमें महानगर दिल्ली के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा Geographical परिवेश उपलब्ध होता है । महानगरों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों और उद्योगपतियों की जो व्यवसायिक मनोवृति होती है उसका परिचय भी यहाँ मिलता है । ये औद्योगिक प्रतिष्ठान किस प्रकार राजनीति को प्रदूषित करते हैं और जिस प्रकार राजनीति का अपने हक्क में अपने निजी हितों की खातिर इस्तेमाल करते हैं इसका भी यहाँ लेखक ने कच्चा चिट्ठा खोल दिया है । महानगरों के बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों के लोग जहाँ एक तरफ बाह्यतः आधुनिक जीवन शैली को अपनाए हुए होते हैं, वहाँ दूसरी तरफ उनके धार्मिक विश्वास परंपरागत धार्मिक रूढ़ियाँ कितने संकीर्णताग्रस्त और दक्यानूसी होते हैं उसका यथार्थ चित्रण भी यहाँ मिलता है । इन औद्योगिक प्रतिष्ठानों की ''बहुरानियाँ'' कहाँ तक ''रानियाँ''और कहाँ तक ''दासियाँ'' है उसको भी लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से उकेरा है । साठ-सत्तर (६०-७०) के दौर में पूरे विश्व में हिप्पी और बिल्टर्स कल्चर फैल रहा था और महानगरों में इन हिजयों और बिटलसो के ''टिठी दल'' विचरण कर रहे थे, उसका भी संकेत लेखक ने विणय और लिलियन के संदर्भ में कर दिया है । अतः कहा जा सकता है कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का यह उपन्यास महानगरीय जीवन के कई आयामों को हमारे सम्मुख उद्घाटित करता है ।

००

नगरीय और महानगरीय जीवन-शैली में अधिक अन्तर परिलक्षित नहीं किया जा सकता, तथापि नगरीजीवन की तुलना में महानगरीय जीवन में अधिक स्वतंत्रता, स्वच्छंदता या उन्मुक्तता को रेखांकित किया जा सकता है। महानगरों में निवास-स्थान और नौकरी या व्यवसाय के स्थान में काफी अन्तर पाया जाता है। कभी-कभी तो निवास-स्थान से नौकरी या व्यवसाय के स्थान पर पहुँचने में कई-कई घंटे व्यतीत हो जाते हैं। परिणामस्वरूप अपरिचय का वातावरण तैयार होता है। फलतः सामाजिक दबाव और मान्यताओं (Social Tabooes) का प्रभाव कम हो जाता है। पुराने जीवन-मूल्यों का ह्रास होने लगता है। वैयक्तिकता का भाव बढ़ने लगता है। संयुक्त-परिवार-प्रथा चरमराने लगती है। संयुक्त-परिवार, युग्मक-परिवार और एकक-परिवार में परिवर्तित होने लगते हैं। इन सबका अच्छा-बुरा प्रभाव मानव-जीवन पर पड़ता है। प्रस्तुत अध्याय में महानगरीय-जीवन पर आधारित ''वे दिन'',''अंधेरे बंद कमरे'', ''तीसरा आदमी'',''मछली मरी हुई'', ''टेराकोटा'',''रेखा'',''छोटे-छोटे पछी'', ''रुकोगी नहीं राधिका'',''अनारो'',''मुर्दाघर'',''किस्सा नर्मदा बेन गंगूबाई'',''बोरीवली से बोरीबंदर तक'',''महानगर की मीता'',''पतझड़ की आवाजें'',''बंटता हुआ आदमी'',''आपका बंटी'',''चित्तकोबरा'',''उसके हिस्से की धूप'', ''दिनांत'',''तत्सम'',''कोहरे'',''छाया मत छूना मन'', ''कृष्णकली'', ''नावें'',''सीढ़ियाँ'',''छिन्नमस्ता'',''मुझे चाँद चाहिए'',''उन्माद'' प्रभृति २५-३० उपन्यासों का अनुशीलन प्रस्तुत करने का उपक्रम है।

(१) वे दिन : ---

हिन्दी उपन्यासों में अंतरराष्ट्रीय परिवेश का चित्रण बहुत कम उपन्यासों में हुआ है। इस दृष्टि से ''वे दिन'' का विशेष महत्त्व है। इसमें चैकोस्लोवाकिया की राजधानी ''प्राग'' के परिवेश को लिया गया है। उपन्यास में प्राग के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग हुआ है, जैसे--''द मदर ऑफ सिटीज़ , द गोल्डन सिटी, द सिटी ऑफ हन्ड्रेडटावर्स , द सिटी ऑफ टियर्स एण्ड नाइट मेयर्स आदि आदि। प्राग के विभिन्न स्थान; - इजेरा,

टेराकोटा : ---

टेराकोटा लक्ष्मीकांत वर्मा का एक प्रयोग-धर्मी उपन्यास है, "टेरा कोटा" इटालियन शब्द है जो टेरा (Terra) और कोटा (Cotta) के योग से बना है। "टेरा" का अर्थ मिट्टी और "कोटा"का अर्थ है मूर्ति। अतः टेराकोटा का अर्थ हुआ मृणमूर्तियाँ, मिट्टी के खिलोने। कदाचित इसके द्वारा लेखक यह अभिव्यजित करना चाहता है कि आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन मिट्टी के खिलोनों के मानिंद है।

टेराकोटा उपन्यास का कथानक का उपन्यास तिहरा है (Three folded) मूलकथा रोहित और मीति की है। इस मूलकथा के समानान्तर माहभारतोत्तर शान्तिपर्व के पाटों को लेकर ऋतुमिता और रोहिताश्व की कथा चलती है जो अनेकानेक संदर्भों में रोहित और मीति की कथा से साम्य रखती है। रोहित-मिति और रोहितश्व-ऋतुमिता के अतिरिक्त एक तीसरी समानान्तर कथा गणेश-व्यास की है। वे लोग एक दर्जन बार उपन्यास के मंच पर अवतरित होकर कथा के नये संदर्भों, घटनाओं के घात-प्रतिघातों तथा पात्रों की प्रकृति एवं नियति के बारे में वाद-विवाद करते दृष्टिगोचर होते हैं। कथा की यह टेकनीक अमृतलाला नागर कृत "अमृत और विष"नामक उपन्यास में भी उपलब्ध होती है। वहाँ सन्त नायक अरविंदशंकर एक उपन्यासकार है जो बीच-बीच में प्रकट कथा एवं पात्रों के भावी मोड़ों पर विचार-विमर्श करता है। इस प्रकार कथा का यह नाटयात्मक रूपबंध बहुत अंशों तक आकर्षक एवं रोचक बन पड़ा है।[२२]

उपन्यास का प्रारंभ हस्तिनापुर की खुदाई में प्राप्त महाभारत युद्धोत्तर काल से कुछ अभिशप्त पात्रों की मिट्टी की मूर्तियों से होता है। ये मिट्टी की मूतियाँ हस्तिनापुर की खुदाई में प्राप्त हुई हैं, जिनमें अपाहिज कम्बीज सेनापति, उनकी अन्ध पत्नी, तीन पुत्रियाँ- ऋतुमिता, ज्योतिमिता और श्रुतीमिता पाण्डव सेनापति कैशिकेय और सामन्त रोहितश्व की मूतियाँ हैं। लेखक यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि यह खंडित मूर्तियाँ एक प्रकार से हमारे ही प्रतिरूप हैं। रोहित इनके संदर्भ में कहता है कि "आज भी दिल्ली में आदमी संत्रस्त है, टूटा हुआ है, क्षत-विक्षत है, पंगु है। फर्क केवल इतना है कि

आज की पंगुता मानसिक है और आज से पहले हस्तिनापुर की पंगुता कायिक थी।''[२३]

उपन्यास के प्रारंभ में वर्मा जी ने ''पुरोवचन'' में उपन्यास की पृष्ठभूमि के संदर्भ में संकेत देते हुए लिखा है- ''ये अधूरे पात्र ही कलियुग की पूँजी हैं। इन्हीं के आधार पर कलियुग में कथाएँ लिखी जाएँगी और उन्हें कोई कलियुग का ही लेखक लिखेगा। वैसे कथा बिलकुल आज की है। आज के जीवन की है, उसकी विसंगतियों की है। ये विसंगतियाँ एकदम नई नहीं है। अक्षौहिणी सेना को अपने ही विरूद्ध प्रयोग का अधिकार अपने विरोधी कौरवों को दे देने की परंपरा आज भी है।'' [२४]

''टेराकोटा'' की मूल कथा रोहित और मिति की है, अन्य दो कथाओं को उसके प्रतिकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, रोहित और मिति में भावनात्मक स्तर पर अभिन्नता है। वे परस्पर एक-दूसरे को चाहते हैं, परंतु वैचारिक दृष्टि से उनमें भिन्नता पायी जाती है। रोहित चाहता है कि मीति उसके साथ विवाह करके एक वैवाहिक जीवन व्यक्ति करे, परंतु मीति की पारिवारिक, आर्थिक मजबूरियों ऐसे हैं कि वह रोहित से विवाह नहीं कर सकती। पचपन खम्भे लाल दीवारें की सुष्मा की भाँति मीति में भी परिवार प्रतिबद्धता की भावना है, जो उसे नौकरी की ओर खींच ले जाती है। मीति का परिवार दहेरादून में है उसके पिता फालिज़ के बीमार हैं। किसी ज़माने में वे दवंग व्यक्तित्व के धनी थे। परंतु लक्के के कारण अब नारकीय जीवन बिता रहे हैं, पुरानी नैतिक मान्यताओं के कारण और उन मानवीयता विपरीत परिस्थितियों के कारण उनका जीवन और भी विषाक्त हो गया है। पुराने नैतिक मूल्य कहते थे कि बेटी के यहाँ का पानी भी पीना हराम है और अब उनको बेटी की कमाई पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। इस लाचार दर्जे के कारण बहुत हो दुःखी रहते हैं। अन्य भी अनेक पारिवारिक आर्थिक कठिनाईयाँ हैं। माँ की आँख का आँपरेशन कराना है। विधवा बहन शोभा अपनी बच्ची को लेकर आ गयी है। छोटी बहन उमा के विवाह का प्रश्न है। छोटे भाई राम की शिक्षा का प्रश्न है। अतः वह दिल्ली के वर्किंग गर्ल्स होस्टेल में रहकर मिस्टर खन्ना के ऑफिस में टाइपिस्ट-स्टेनो-सेकेटरी की

नौकरी करती है ।

इस प्रकार पचपन खम्भे लाल दीवारों की सुषमा और प्रस्तुत उपन्यास की मीति की सामजिक, पारिवारिक,आर्थिक स्थितियों में बहुत ही समानता है। परंतु दोनों में वैचारिक और चारित्रिक दृष्टि से काफी भिन्नता है। सुषमा नील से विवाह करने का ख्वाब तो देखती है पर कर नहीं पाती विवाहित और अविवाहित में से वह अविवाहित रहने की स्थिति को अंगीकृत करती है और उसकी ही घुटन में दिनरात जीती है। ठीक इसी बिदु पर मीति सुषमा से अलग पड़ती है। वह पुराने नैतिक मूल्यों को ठुकराते हुए एक नए प्रकार की जीवन शैली जो आधुनिक और महानगरीय जीवन की उपज है को पसंद करती है अर्थात् अविवाहित रहकर भी वह वैवाहिक स्थितियों को भोगना चाहती है। इसमें उसे कोई अनौचित्य नहीं दिखता। वह रोहित की प्रियतमा बनकर रहना चाहती है, यहाँ पर सुषमा की तुलना में वह अधिक bold दिखती है। मीति और रोहित का मित्र नीरद उन दोनों को डिनर पर आमंत्रित करता है नीरद अपनी पत्नी जया को यह बताता है कि रोहित और मीति पति-पत्नी हैं। इस बात पर मीति अपनी एक सहेली को कहती है कि, "अगर मैं रोहित की पत्नी बनकर उसके लिए खाना बना सकती हूँ तो क्या वह मेरी सहेली की खातिर एक डिनर में पति नहीं बन सकता।" [२५] इस प्रकार अविवाहित होते हुए भी रोहित-मीति का पति-पत्नी बनकर रहना महानगरीय जीवन के आयामों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है।

माँ की बीमारी का हाल सुनकर मीति को दहेरादून जाना पड़ता है। यहाँ पर कस्बाई जीवन-मूल्यों के संदर्भ में मध्यवर्गीय जीवन को कैसी धुन लग जाती है और फलतः जीवन पीड़ा एवं घुटन का एक सबब बन जाता है, उसका लेखक ने सशक्त चित्रण किया है। मीति के सामने विधवा बहन शोभा के विवाह का प्रश्न है। मीति का परिवार पुराने विचारों का है। अतः सर्व प्रथम तो अपने घर परिवार से जदोजहद करना पड़ता है। किसी तरह अपनी माँ को समझाकर शोभा का पुनर्विवाह प्रकाश नामक एक आदर्शवादी एवं उदार-हृदय युवक से करा देती है। इस प्रकार शोभा की समस्या किसी प्रकार हल होती है। यहाँ पर हमें सर्व प्रथम ज्ञान होता है कि मिस्टर खन्ना के यहाँ

नौकरी करते हुए मीति आई.ए.एस. की तैयारियाँ भी कर रही थी। वह उसमें उत्तीर्ण हो जाती है। ठीक इसी बिंदु से कहानी एक नया मोड़ लेती है। Mrs. खन्ना आत्महत्या कर लेती है। मि. खन्ना पागल हो जाते हैं। मीति के प्रयत्नों से मि. खन्ना ठीक भी हो रहे थे, परंतु एक दिन अचानक वे अस्पताल से भाग जाते हैं और इस प्रकार मि. खन्ना के दो बच्चों- विकी और सिमी-की ज़िम्मेदारी भी मीति के ऊपर आ जाती है। रोहित भी मीति और खन्ना के संबंधों को लेकर कुछ शंकित-सा रहता है। अतः मीति सोचती है कि रोहित के साथ उसकी ज़्यादा दिन नहीं पट सकती। रोहित उसे गृहिणी बनाना चाहता था। मीति केवल प्रियत्मा बनकर रहना चाहती थी। इस बैचारिक भिन्नता के कारण मीति रोहित की शादी शीला से करवा देती है और स्वयं इलाहाबाद आइ.ए.एस. की ट्रेनींग में चली जाती है।

मीति के इलाहाबाद चले जाने के बाद कथा में एक लम्बा, लगभग बारह वर्षों का अंतराल आता है। मीति आइ.ए.एस कर लेती है और इन बारह वर्षों में उच्च प्रशासकीय पदों पर कार्य करते हुए कमिश्नर जैसे प्रशासन के उच्चतम पद को प्राप्त कर लेती है। मीति के कमिश्नर हो जाने के कारण मीति के घर परिवार की स्थितियों में भी गुणात्मक परिवर्तन आता है। विधवा बहन शोभा का पुर्नविवाह तो वह पहले प्रकाश नामक युवक से करा ही चुकी थी। छोटी बहन उमा को डाक्टर तथा छोटे भाई राम को एंजीनियर बनाने में भी वह सफल होती है। पिता की बीमारी में भी अब कुछ ठीक होने लगा है। ऑपरेशन के बाद माँ को अब दिखने लगा है। उमा का विवाह मेडिकल कॉलेज के उसके ही एक सहअध्यायी डॉ. नरेश से होने जा रहा है। विवाह का संपूर्ण उत्तरदायित्व मीति अपने ऊपर लेती है। वह इस विवाह को शानो शौकत से संपन्न कराना चाहती है और अपने तमाम अधूरे अरामानों की आपूर्ति इसके द्वारा कर लेना चाहती है। इसमें वह अपने तमाम मित्रों, संबंधियों और परिचितों को निमंत्रित करती है। रोहित-शीला भी आमंत्रीत हैं। मीति उमा को एक परंपरिक नववधू Tradition bride ट्रेडिशनल ब्राइड-के रूप में देखना चाहती है। अतः वह चाहती है कि विवाह की तमाम विधियाँ और अनुष्ठान परंपरागत तथा विधिवत् हों। आधुनिका मीति यहाँ कहीं-कहीं

पुराणपंथी जैसा व्यवहार करती है। वस्तुतः मीति के इस व्यवहार के पीछे उसकी दमित अंतःचेतना ही कार्य करती है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों के पीछे मीति वैवाहिक जीवन नहीं भोग सकी। इसलिए वह अपनी समूची दमित इच्छाओं को यहाँ पूर्ण करना चाहती है। अत्याधिक उत्साह के साथ वह यह सारा समारोह संपन्न करवाती है। परंतु शादी के समय उसे दौरा पड़ता है और उमा की विदा के समय भी वह अचानक गायब हो जाती है। वह नव दम्पति को दूसरे स्टेशन पर मिलती है, क्योंकि वह खुलकर रोना चाहती थी परंतु रोहित की उपस्थिति में शायद यह संभव नहीं था। उसका High ego से यह करवाता है।

इस प्रकार टेराकोटा की मीति की स्थिति लगभग ५५ खम्भे लाल दीवारें की सुषमा जैसी है, परंतु सुषमा जहाँ पूर्णतया टूटती हुई-सी प्रतीत होती हैं, वहाँ मीति भीतर से टूटी जरूर है, परंतु इस टूटन की क्षति-पूर्ति (आपूर्ति) अपनी High-Position के द्वारा वह कर लेती है। इस टूटन के साथ-साथ उसमें यह एहसास भी है कि उसने अनेकों की जिन्दगी को बनाया है। यह एहसास उसके व्यक्तित्व को दृढ़ता प्रदान करता है। डॉ.विवेकीराय प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखते हैं-- "मूल्यहीनता और मूल्यानुसंक्रमण की इस बीसवीं शताब्दी में महानगरीय बोध के बीच जिती एक सुशिक्षित युवा नारी के भीतर परिवार की यह प्रतिबद्धता, पारिवारिक मूल्यों के लिए नैतिक मूल्यों की बलि देने की आस्था संहिति और आत्मानुशासन की स्थिति विचित्र है, किंतु अप्रामणिक नहीं है।"[२६]

००

रेखा : ---

रेखा एक नायिका प्रधान उपन्यास है, इसमें लेखक ने अनमेल-विवाह की समस्या को एक दूसरे धरातल पर प्रस्तुत किया है। सेवासदन, निर्मला, गबन जैसे उपन्यासों में अनमेल विवाह की समस्या का एक सामाजिक-आर्थिक पक्ष है; जबकि यहाँ अनमेल विवाह की समस्या महानगरीय परिवेश की एक परिणति के रूप में प्रस्तुत हुई है। रेखा दिल्ली विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र

की एम.ए की छात्रा है। वह अपनी स्वेच्छा से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त प्रो. प्रभाशंकर से विवाह-सूत्र में बँधती है। माता-पिता तथा अन्य अभिभावकों के लाख समझाने बुझाने पर भी वह यह कदम उठाती है। अभिप्राय यह है कि रेखा उस स्थिति में है जिसमें वह अपने निर्णय स्वयं ले सकती है। इस प्रकार की स्वतंत्रता या नारीचेतना महानगरीय परिवेश का ही परिणाम है। यदि ग्रामीण या कस्बायै वातावरण होता तो यह नौबत ही नहीं आती।

डॉ. प्रभाशंकर पहले इलाहबाद यूनि. में थे। उनका वैवाहिक जीवन अल्पकालिक रहा था। पत्नी की मृत्यु के उपरांत उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। क्योंकि अपने रंगीन, गुलाबी स्वभाव तथा विद्वता के प्रभामंडल से विद्यार्थिनीयों को अपने मोहपाश में फाँसना उनके लिए बाएँ हाथ का खेल था। उनकी एकरक्षिता (Kept-रख्यल) देवकी उनके बारे में कहती है-- "शिकार का तो शौक उन्हें है, लेकिन शेर-चीते आदि जंगली जानवरों के शिकार का शौक नहीं है। वह शहर की आस-पास उड़ने वाली चिड़ियों का ही शिकार करते हैं, और इसमें इनका निशाना अचूक होता है।"[२७]

इस प्रकार प्रो. प्रभाशंकर नई-नई कोलेज युवतियों को अपने पद-प्रतिष्ठा और विद्वता के प्रभाव में फाँसत थे। इस प्रकार उनकी यौन-क्षुधा परितृप्त होती रहती थी। दूसरे स्थायी तौर पर देवकी नामक एक स्त्री उनकी थी, जिसे उनकी अवैघ पत्नी या रख्यल कह सकते हैं देवकी का पति एक साधारण-सा व्यक्तित्वहीन था। एक स्कूल में हेडमास्टर पद का उम्मींदवार था। डॉ. प्रभाशंकर उस चयन समिति का लाभ उठाया। हेड-मास्टर की पत्नी देवकी सुंदर और गठीली थी। कई वर्षों तक उसके सौंदर्य का नशा प्रोफेसर पर छाया रहा। देवकी के बच्चे भी शायद प्रोफेसर के ही थे। बाद में वे प्रोफेसर एवं अध्यक्ष होकर दिल्ली चले आए, परंतु अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए देवकी उन संबंधों को बराबर बनाये रखती है। यह द्वितियक प्रकार के अवैध संबंध भी नगरीय जीवन की देन है। इसका अर्थ यह नहीं कि गाँव या कस्बे में ऐसा नहीं होता, परंतु गाँवों यो कस्बों में ऐसे भरसक प्रसंगों की निंदा भी होती है। जबकि बड़े नगरों में ऐसे संबंधों को नज़रअंदाज कर दिया जाता है। नगरीय परिवेश में सुंदर पत्नी को पदोन्नति (Promotion) के लिए सफलता की

सीढ़ी बनाने वाले लोग बहुतायत से मिलते हैं। महानगरों में ऐसे संबंधों को "छोछ" की दृष्टि से देखना कुछ लोग पिछड़पन की निशानी मानते हैं। प्रगतिशील और फोरवडेड कहे जानेवाले लोग यौन संबंधों को उतनी अहेमीयत नहीं देते। यह यौनसंबंधों का उपयोग अपना काम निकलवाने-या बनवाने का एक ज़रीया मात्र समझते हैं। कमलेश्वर के उपन्यास "डाक-बंगला" के मि.बत्रा का तो व्यवसाय ही इसी थियरी पर चलता रहा है।

ग्रामीण या कस्बायै वातावरण में यदि कोई छात्रा अपने शिक्षिक से विवाह करे तो बावेला मच सकता है। एक बड़ा issue खड़ा हो सकता है, किंतु महानगरीय वातावरण में ऐसे issue को ज़्यादा टूल नहीं दिया जाता।

"रेखा"उपन्यास की मुख्य समस्या यौन अतृप्ति और उसे, लेकर चलने वाली भटकन है। "रेखा" अपनी भावुक अनुभनहीनता के श्रद्धातिरेक में प्रोफेसर से शादी तो कर लेती है, परंतु उसकी यौनसुलभ उद्याम वासनाओं की परितृप्ति प्रोफेसर के द्वारा संभव नहीं है। इस तथ्य का अनुभव उसे सनेही-सनेही होने लगता है। जब रेखा के देवकी के युवा पुत्र रमाशंकर जी संभवतः प्रोफेसर प्रभाशंकर का ही पुत्र है-- का परिचय होता है। तब उसके प्रथम स्पर्श में उसे यौवन की मादक, मधुर गंध का परिचय होता है। उस क्षण तो उसके भीतर के विवेक से, मनोवैज्ञानिक दृष्टया कहें तो उसकी "ego"के कारण उसके चरित्र की रक्षा हो जाती है। परंतु उसकी मानसिकता में एक छोटा-सा छिद्र उस दिन अवश्य हो जाता है। उसमें सनेही-सनेही यह भावना और सोच विकसित होते हैं कि प्रोफेसर से विवाह करके उसने कितना कुछ गँवाया है और उस दिन से वह भी प्रोफेसर की तरह शिकार की टोह में लग जाती है, उसका अवचेतन मानस पर (Consiousmind) इसे किसी प्रकार का अनऔचित्य नहीं देखता।

यहाँ चीनी दार्शनिक कान्यूसियस को एक उक्ति बरबस हमारा ध्यान खींचती है- "If a man of fotry marries a girl of twenty, then it is hundred person sure that he marries her for others."

यौन अतृप्ति के कारण रेखा के जीवन में सोमेश्वरदयाल, शशीकांत, निरंजनकपूर, मेजर यशवतंसिंह, सुरेन्दधीर और योगेन्द्रमिश्र यों कुल छः (६)

पुरूष आते हैं। यह समूची स्थिति महानगरीय परिवेश के कारण है। ग्रामीण परिवेश में रेखा के जीवन की यह परिणितियाँ, असंभव-सी प्रतीत होती हैं। निरंजन कपूर Mrs.रत्ना चावला की पुत्री शीरीं की अपेक्षा रत्नाचावला में अधिक गरमी का अनुभव करता है। महानगरीय जीवन-शैली में अधिक खुलापन और स्वच्छंदता होती है। अतः इसे भी हम महानगरीय जीवन की एक परिणति मान सकते हैं।

उपन्यास में विश्वविद्यालयन वातावरण तथा उच्चवर्गीय जीवन शैली होटल-पार्टियाँ, काकटेल पार्टियाँ, सेमिनार इत्यादि का वर्णन मिलता है, जो इसके महानगरीय जीवन को गहराता है।

००

किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई : ---

अभिजात, कुलीन या उच्चवर्गीय वर्णशंकरता का परिचय जिस प्रकार हमें, जयशंकर प्रसाद के यथार्थवादी उपन्यास ''कंकाल''में उपलब्ध होता है, उसका साक्षात्कार शैलेष मटियानी महानगर मुंबई के संदर्भ में ''किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई'' में कराते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा लेखक मोहमथी मुंबई के दो नारी रूपों का परिचय पाठक को करवाते हैं। एक है सेठानी नर्मदाबेन और दूसरी है केले बेचनेवाली गंगुबाई। उपन्यास की कथा-शैली भी बड़ी रोचक है।

नर्मदाबेन एक सुंदर, चंचल और शौख-युवति थी। अपने कोलेज के दिनों में वह एक युवक से प्रेम करती थी, परंतु नर्मदाबेन के साथ भी वही होता है, जो प्रायः अभिजात वर्ग के लोगों में होता रहा है। नर्मदाबेन प्रेम किसी को करती है, पर उनका विवाह मुंबई के सेठ नगीनदास से होता है। विवाह के उपरांत नर्मदाबेन शारीरिक और मानसिक प्रेम की संतुष्टि होती तो कदाचित उसका जीवन भी नारी गौरव की ऊँचाईयों को स्पर्श कर पाता, परंतु सेठ नगीनदास शारीरिक प्रेम देने में एक प्रकार से अक्षम से है और मानसिक प्रेम देने का उनके पास समय नहीं है। सेठ नगीनदास के पास रुपया-पैसा है, इज्ज़त है नहीं है तो केवल समय। दूसरे, सेठजी नर्मदा और सेठ नगीनदास

दोनों के बीच ऊँमर का भी बड़ा फाँसला है। यहाँ स्थिति भगवतीचरणजी कृत रेखा जैसी है। परंतु "रेखा" में प्रो.प्रभाशंकर शारीरिक दृष्टि से सेठ नगीनदास जितने अक्षम नहीं हैं। दूसरे प्रो. प्रभाशंकर का विद्वतापूर्ण व्यक्तित्व भी किसी स्त्री को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। सेठ नगीनदास में उसका नितांत अभाव है, वह एक लुंजपुंज व्यक्तित्व के सेठ हैं, जो रुपियों को छोड़कर अन्य दृष्टियो से कंगालो से भी कंगाल हैं।

उनकी इस स्थिति के लिए उनका असीमित एवं असंयमित यौनाचार है। अपनी जवानी के दिनों में उन्होंने वारांगनाओं, कामवालियों, दांतूनवालियों, नौकरनियों के साथ रंगरेलियाँ खेलीं थी, अब उनके सेक्स के खाते में सेठानी नर्मदाबेन के लिए कोई बेलेन्स नहीं है। सेठ अपनी इस लाचारदर्जी को भलीभाँति समझते थे। दूसरी ओर नर्मदाबेन सेठानी का यौन ठाँठे मार रहा है। पूरे ऊबार पर है। विपुल वासनारती सेठानी नर्मदाबेन के प्यार को संभालने की शक्ति सेठ नगीनदास में नहीं है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि एक युवति का विवाह बूढ़े कमज़ोर व्यक्ति से होता है तो उसकी यौनआकांक्षा और भी बढ़ जाती है, वह एक प्रकार से निम्फो हो जाती है। सेठानी नर्मदाबेन को यदि कोई समदयस्क-हमजोली युवक मिलता तो कदाचित उसके जीवन की ऐसी परिगति नहीं होती।

सेठ नगीनदास अपनी अक्षमता तथा पत्नी के भरपूर यौवन से भलीभाँति परिचित है। फलतः गुजराती कहावत - "बाँधी मुठी लाख नी" के अनुसार अपनी कुलमर्यादा भी बनी रहे, इज्जत आवरू भी बनी रहे और सेठानी की वासनापूर्ति भी होती रहे, ऐसा एक बीच का रास्ता बतलाते हैं और उसका पूजारी ऐसा रखते हैं, जिससे नर्मदाबेन अपना संबंध स्थापित कर सकें। सेठानी को मुरली सिखाने के लिए एक खास संगीत मास्टर को रखा जाता है। बाद में तो स्वयं नर्मदाबेन सेठानी इस कला में माहीर हो जाती है। वह स्कूल और अनाथ आश्रम खुलवाती है। आचार्य संचालक और अपने तबीयत के रखती है। कवि, गोष्टियों का आयोजन आए दिन होता रहता है और उनमें से रंगीले शायरों को सिठानी अपने हिसाब से छान लेती है। यहाँ पर लेखक ने महानगरीय समाज के अंभिजात वर्ग में क्या-क्या हो रहा है या क्या-क्या हो

समता है उसका कच्चा-चिट्ठा खोल कर दिया है। इस समाज में पुरूष-वैश्यों (Male Prestitute)का प्रचलन भी होता है जिसे हम श्रीमान खन्ना महोदय जैसे चरित्रों से जान सकते हैं। खन्ना खादी का बुदाली जोला लटकाए समाजसेवा का बहाना कर घुमता रहात है, किंतु उसका उसली काम तो अभिजात वर्ग में सेठानी नर्मदाबेन जैसी स्त्रियों को तलाशना और उनकी वासनापूर्ति से पैसे कमाना यही है। उपन्यास में इस प्रकार की घटना को एक लेखन मिलता है, जिसमें सेठानी नर्मदाबेन किसी बड़े होटल में उसके साथ एक कमरा बुक करवाती है। एक बार के सहवास के बाद सेठानी जब दूसरीबार के लिए उसे कहती है, तब खन्ना साफ इनकार कर जाता है। यह कहते हुए कि Madam, इस Building(ब्लिडींग) को भी बरकारा रखना है। [२८]

इन सब लोगों से सेठानी नर्मदाबेन के यौन तृष्टि तो होती है। किंतु सच्चा प्रेम तो जिंदगी में केवल उसने तीन व्यक्तियों से किया है- विवाह पूर्व का प्रेमी, संगीत मास्अर तथा कृष्ण। इनमें से विवाह-पूर्व का प्रेमी तो विवाह के उपरांत छूट जाता है, संगीतमास्टर से जब अधिक आत्मीयता हो जाती है तो सेठ नगीनदास उसे एक अकस्मात में मरवा डालते हैं। कृष्णा से परिचय कवि गोष्ठियों के माध्यम से होता है। कवि कृष्णा कवि गोष्ठियों से दूसरे शायरो-सा दिल-फेंक व्यक्ति नहीं है। वह सच्चे प्यार का धनी है। अतः सेठानी जब उसके प्रेम को धन सम्पति द्वारा खरीदना चाहतीं है तो वह साफ इनकार कर देता है। सेठानी नर्मदाबेन उसके सामने गिड़गिड़ाने लगती है। यथा- ''करशन, इससे तुम्हें क्षणिक ग्लानि हो सकती है, पर मेरा शेष जीवन सुखी हो जाएगा। मेरे असीम सुख के लिए तुम अपनी क्षणिक दुविधा की बलि देकर तो देखो। तुम पहले पुरूष हो जिसे मैं अपनी संपूर्ण आस्था समर्पण करने जा रही हूँ ... मैं तुम्हें नारी पुरूष के मिलन का चरमसुख दूंगी।'' [२९]

कृष्णा एक संवेदनशील भावुक कवि है सेठानी की याचना रूपी आँच में कदाचित वह पिघल भी जाता, किंतु वह केले बेचनेवाली गंगुबाई से प्यार करता है। वह सच्चे दिल से गंगुबाई को चाहता है और गंगूबाई भी उसे अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर चुकी है और कृष्णा गंगूबाई के साथ छल

नहीं कर सकता। जब सेठानी नर्मदाबेन को यह तथ्य ज्ञात होता हैं तब वह गंगूबाई के पास पहुँचती है, "गंगूबाई तने नाणां केटला जोइए...मारा पासे थी लई जा...हज़ार...बे हज़ार...त्रण हज़ार...पण ऐ करशन बाबू छे ने अेने साफ ना पाडी दे, कि तू ऐनी साथे मोहब्बत करती नथी हुं तारे पगे पडुं छु गंगूबाई ! तने हुं रहेवा माटे बांदरा मां फलेट आपीश पण तु मने करशनबाबू ने मने आपी दे।"[३०]

वस्तुतः सेठानी नर्मदाबेन को प्रेम खरीदने की एक आदत-सी पड़ गई है। अतः वह सबको उसी तराज़ू पर तौलती है, पर दौलत से वासना खरीदी जा सकती है, प्रेम नहीं। गंगूबाई सेठानी के नोटों के बंडल को एक तरफ फैंकते हुए कहती है, "सेठानी जाई ही तुमची मका न को...या तुमचा बान्द्राचा फलेट मला न को...पण तो तुमचा करशन बाबू माझा मनाचा गीत गोविंदा...मला फकत बीच पाहिज्ञे !"

इस प्रकार पुस्तुत उपन्यास में शैलेष मटियानी ने दो परस्पर विलोभी नारी चरित्रों को एक-दूसरे के सामने रखकर हमारे सभ्य समाज की गंदी घिनौनी परतों को खोला है। इस उपन्यास में लेखक ने मुंबई के दोनो प्रकार के जीवन को प्रस्तुत किया है। एक संसार है सेठ नगीनदास और नर्मदाबेन सिठानी जैसे का दूसरा संसार है गंगूबाई कलन उस्ताह और पोपट जैसों का। इस प्रकार अभिजात वर्ग के साथ-साथ मुंबई के फूट-पाथों की जिंदगी और गंदी-घिनौनी झोंपड़पट्टीयों की जिंदगी को लेखक ने यर्थाथवादी ढंग से उकेरा है।

००

बोरिवली से बोरिबंदर तक (शैलेष मटियानी) :---

बोरिवली से बोरिबंदर तक उपन्यास मुंबई के मूंगरापाडा, पील हाउस, कमाठीपुरा जैसे अँधेरी आलम के विस्तारों पर आधारित एक घोर यथार्थवादी उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में शैलेष मटियानी ने अपने अपरागत फर्स्टहेन्ट जीवनानुभवों को बेवाक और बेलोस शैली में प्रस्तुत किया है। उपन्यास के संदर्भ में हेनरी जेम्स का कथन है -"A novel is direct amd personal experience of life" [३१] अर्थात् उपन्यास में मानवजीवन के प्रत्यक्ष एवं अपरागत अनुभवों का चित्रण होता है।

शैलेष मटियानी अपने गाँव से Bombay भाग आए थे। मुंबई भाग आने के बाद जिन अनुभवों से उन्हें गुजरना पड़ा उसे विरेन के पात्र द्वारा उन्होंने निरूपित किया है। प्रस्तुत उपन्यास की दोनों तरह से आलोचना हुई है। कुछ लोगों ने उसे निहायत अश्लील और किसी कचरा मसाला, मुंबईया फिल्म की कहानी जैसा बताया है, तो कुछ लोगों ने उसे मोहमयी मुंबई नगरी के कटु यर्थाय को व्यक्त करनेवाला, श्रेष्ठ उपन्यास बताया है। जहाँ "विशाल भारत" [३२] वहाँ एक अन्य एक कमजोर कथानक वाला उपन्यास बताया है। वहाँ एक अन्य एक पत्रिका में कहा गया- "अनेक स्थलों पर उपन्यासकार ने अपनी शैली के सत्य कटु सत्य के दर्शन कराए हैं। संभव है कुछ आदर्शवादी अश्लीलता का रूप दे, किंतु सारे उपन्यास में अश्लीलता इतनी ही है, जितना कि गरीबी और बेबसी को अश्लील कहा जाए।" [३३] स्वयं मटियानीजी अपने लेखन के संदर्भ में "मेरी तैंतीस कहानियाँ" की भूमिका में लिखते हैं - "जो तथा कथित उग्रता, अभद्रता और अश्लीलता है, वह पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत होनवाली शोषण के तरीकों से कहीं बहुत मर्यादित श्लील और शिष्ट है। हिंदी के अन्य लेखकों की तुलना में यदि मेरी रचना में अधिक आक्रोश और बोखलाहट है तो उसका एकमात्र कारण है। मैंने आर्थिक और नैतिक अन्य व्यवस्थाओं के दुष्परिणामों को देखा सुना ही नहीं परंतु भोगा भी है।" [३४]

इस उपन्यास का नायक वीरेन कुमाऊ प्रदेश के अपने गाँव सुपही से दिल्ली भाग जाता है और वहाँ से किसी तरह मुंबई जा पहुँचता है। दिल्ली से मुंबई तक की यात्रा वह बिना टिकट के करता है। इस यात्रा में उसका एक पंडित मित्र भी साथ था, जो सवाही माधवपुर स्टेशन पर पकड़ा जाता है। वीरेन झूठ बोलता है कि उसका टिकट उसके साहब के पास है और वे किसी दूसरे डिब्बे में बैठे हैं। वीरेन का नौकर-सा हुलिया देखकर टिकट-चैकर को उसकी बात का विश्वास हो जाता है। इस प्रकार वह मुंबई तक तो पहुँच जाता है, किंतु मुंबई में वह दूसरे चैकर द्वारा वह पकड़ा जाता है। उस चैकर को वीरेन की लाचार, विवश स्थिति पर दया आ जाती है और वह उसे छोड़ देता है। उसके बाद वीरेन मुंबई के ही किसी स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर रात गुजारता है। प्लेटफर्म पर इधर-उधर भटकते हुए वह एक दादा को देख लेता है, जो उत्तर प्रदेश के किसी भैया का सौदा ले रहा था। जेब काटने को मुंबईया भाषा में सौदा लेना कहा जाता है। दादा डरा-दमकाकर वीरेन को चुप करा देता है। ये दादा मुंगरापाडा के एक कुख्यात दादा थे। वीरेन की कहानी सुनकर दादा को वीरेन पर तरस आ जाता है। फलतः वे उसे अपने

यहाँ आश्रय देते हैं। और अपनी प्रेमिका नूर के हाथ की चाय पिलाते हैं। यहाँ पर वीरेन नूर की दर्द भरी कहानी से परिचित होते है। यह नूर बस्तुतः नैनिताल की रेवा थी, जो किसी बदमाश के झांसे में मुंबई आ गयी थी। मुंबई में वह देह का सौदा करने के लिए मज़बूर हो गयी थी। किस्मत रेवा की भागुबाई के कोठे पर पहुँचा देती है, जहाँ वह एक वैश्या का जीवन बिताती है। भागुबाई के कोठे से छुड़ाने का काम युसुफ दादा करते हैं। वे उसे एक खोली भी दिलाते हैं। उस समय युसुफ दादा ने नूर को कहा था- ''दरसल मैं बहुत बुरा हूँ। तुमसे ऊँमर में भी ज़्यादा हूँ, सूरत शक्ल भी अच्छी नहीं है, पर तुम पाओगी कि दिल मेरा बुरा नहीं है। तुम्हारी मासूमी का छाया मेरे गुनाहों को नेस्त -नाबूद कर देगा। ऐसी उम्मीद है मुझे। फिर अगर मेरी जिन्दगी में आने के बाद भी, तुम्हें कोई माकूल आदमी मिल सके तो मैं रोकूंगा नहीं तुम्हें। तुम्हें हक्क होगा, जिसे तुम्हारा दिल चाहे उसकी जिंदगी आबाद करो। वहाँ तुम मोहब्बत के ज़रोए जाओ, महज़ रोटी, कपड़ा ढूँढने या सहारा पाने नहीं।''[३५]

जब वीरेन को इस बात का पता चलता है कि युसुफ दादा की रखैल नूर नैनिताल की रेवा है, तब उसके मन में उसके लिए प्रण्य भाव पैदा होता है। बीच में विठ्ठल और स्वामी नूर को भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, किंतु उसमें वे सफल नहीं होता। अंततः उन दोनों का हृदय परिवर्तन होता है, वीरेन और नूर स्नेही-स्नेही परस्पर के गहरे प्रेम में डूब जाते हैं। एक बार युसुफ दादा देख लेता है। दादा आग बबूला होकर वीरेन पर टूट पड़ता है और उसे नीचे पटककर उसकी छाती पर चढ़ बैठता है, किंतु अचानक उन्हें कुछ हो जाता है और वह वीरेन की छाती के ऊपर से उढकर कहीं चल देते हैं, कदाचित युसुफ दादा को अपना वह कोल याद आता है, जो उन्होंने नूर को कभी दिया था। भागूबाई के कोठे पर से जब युसुफ दादा नूर को लाए थे, जब उन्होंने नूर को कहा था कि भविष्य में यदि किसी को सच्चे दिल से प्यार करेगी तो उसे अपनी जिंदगी आबाद करने का पूरा हक्क रहेगा।

जब युसुफ दादा वीरेन को छोड़कर चले जाते हैं तब वीरेन और रेवा (नूर) टिकट-चैंकर के यहाँ आश्रय लेते हैं। युसुफ दादा उनका पत्ता पूछते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं, तब वीरेन घबराकर पुलीस को फोन करने की बात करता है। वीरेन की इस बात पर रेवा उसे बताते हुए कहती है - ''वह खूनी है, बदमाश है, लेकिन आपकी तरह हेवान नहीं है।''[३६] और सचमुख में दादा नूर और उसके खुदा भगवान कृष्ण से माफी माँगता

है। वीरेन युसुफ दादा की भीतर की इन्सानियत से परिचित और प्रभावित होता है।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में डॉ. सलीम वोरा ने अपने प्रबंध में लिखा है- ''सचमुच में फिल्मी प्रेमकथा-सी लगने वाली कहानी एक मामूली कहानी मात्र बनकर रह जाती। यदि उसे मटियानीजी के सर्जक हाथों ने, कलमों ने, न सँवारा होता। इसमें निरूपित परिवेश की सच्चाई और मूँगरापाड़ा की कर्दम-कीचड़ में उगे हुए मानवता के कमलों को देख-दिखा पाने की लेखक की दृष्टि इसे एक करती रचना की कोटि में पहुँचा देती है। मूँगरपाड़ा, पीलहाऊस, कमाठीपुरा की नालियों में रेंगते से अली हुसेन बक्ष, कली हुसेन, अन्नास्वामी, विठ्ठल , दादा डिसोज़ा, भागुबाई शारदाबाई, किट्टी पिचना, नूर जैसे चरित्र जहाँ मानव मूल्यों की सरेआम हर्जा होती है। जहाँ नंगापन्न ही value है। जहाँ औरतों की सपलाय-अरे माँ और बहनों तक की -होती है; परंतु कि जैसे पहेले कहा जा चुका है यह नंगापन केवल जिस्म का नंगापन है। ये बिगडे हुए नहीं, भटके हुए चरित्र है, दिल के हाथों मार खाए हुए - घायल, आहृत, लहूलोहान-पर दूसरी तरफ कानजी सेठ, सेठानी वसुंधरा बेन, गरूमाता के नाम चंदा वसूलकर कमाठी-पुरा की रंडियों के पास जानेवाला साधु-पंडित जैसे नंगे पात्र भी हैं, जो ऊपर से साफ-सुथरे दिखते हैं, परंतु उनकी नाड़ियों में नंगेपन के कीड़े कुलबुलाते हुए नज़र आएँगे।'' [३७]

यदि हम शैलेष मटियानी द्वारा लिखित मुंबई की पृष्ठ-भूमि पर आधारित ''मेरी तैंतीस कहानियाँ'' को पढ़ें तो हमें उसमें संकलित कई कहानियाँ के बीज़ प्रस्तुत उपन्यास में मिल सकते हैं।

००

छोटे-छोटे पक्षी : ---

छोटे-छोटे पक्षी सतीश और दीक्षा की एक अनुभव यात्रा है। दोनों इलाहाबाद में रहते हैं, किंतु प्रेमविवाह करने के लिए दिल्ली भाग आते हैं, और यहाँ से शुरू होती है महानगरीय जीवन की आपाधापी, सतीश एम.ए. प्रिवियस का छात्र है। उसके पिता ऑफिस में हेड क्लर्क है और अपने बेटे को आई.ए.एस कराके अफसर बनाने तथा दहेज में बहुत मोटी रकम गाँठने के ख्वाब देख रहे हैं, दूसरी तरफ दीक्षा ने High-School पूरा किया है और कोलेज में दाखिला भी ले लिया है। उसके पिता

एक निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति हैं। दीक्षा के विवाह के लिए दहेज जुटाने में असमर्थ हैं। फलतः वे दीक्षा का विवाह एक दुहाजू से कर रहे थे। सतीश और दीक्षा को इलाहाबाद से दिल्ली नहीं भागना पड़ता यदि दीक्षा के पिता दीक्षा की शादी के लिए जल्दी नहीं मचाते। अतः दोनों को इलाहाबाद से दिल्ली भागरकर शादी करनी पड़ती है जहाँ उनका परिचय जीवन भोंडी और कुरूप महानगरीय वास्तविकताओं से होता है। महानगरीय जीवन में बेकारी, मकानो की तंग-दृष्टि, गुंडागर्दी, रिश्वतखोरी आदि से इन दोनों का परिचय होता है। वे समझते थे कि दिल्ली जाने पर उनकी समस्याओं का अंत हो जाएगा। किंतु दिल्ली पहुँचने पर उन्हें यह वास्तविकता ज्ञात होती है कि महानगर वास्तव में मानव-जीवन की समस्याओं का भी महासागर होता है।

लेखकीय वक्तव्य में मटियानीजी ने कहा है -"छोटे-छोटे पक्षी प्रेम-विवाह से संबंधित सभी पक्षों पर एक विहंगम दृष्टि है- सिर्फ प्रेमी-प्रेमिका या उनके अभिभावों पर ही नहीं बल्कि स्वयं प्रेम पर भी।" [३८]

इस प्रकार सतीश-दीक्षा की यह अनुभव यात्रा उन सब लोगों की भी अनुभव-यात्रा हो जाती है, जो जीवन के परंपरागत मूल्यों को नकारते हुए एक नई लीक बनाना चाहते हैं। प्रेम करने का समय काल्पनिक यूटोपिया का है, भावनाओं और कल्पनाओं का होता है। जीवन की वास्तविकताओं का वहाँ दखल नहीं होता, परंतु प्रेम-विवाह करने हेतु जब कोई युग्म मागता है तो उसके सामने जीवन की ठोस वास्तविकताएँ अपना राक्षसी मुँह फाड़कर खड़ी हो जाती हैं। मायावी दुनिया खिसक जाती है और उसके स्थान पर पथरीली रेतीली जमीन आ जाती है। जीवन के साथ एक नया प्रयोग करने के इरादे से कई लोग भाग खड़े होते है, पर उनमें से बहुत यौवन के उस प्रथम ज्वार के समाप्त होते ही लौट आते है। माँ-बाप या अभिभावकों से क्षमायाचना करके उनके कहे अनुसार शादी-ब्याह कर लेते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि वे लोग जिंदगी के इस वास्तविक तथ्य से अपरिचित होते हैं कि भागना आसान होता है, किंतु उसके बाद के परिणामों को भोगना उतना आसान नहीं होता। यह भागना भावना और कल्पना से यथार्थ की ओर संक्रमित होता है। जिंदगी कोई सरल रेखा नहीं है, उसमें कई कटुताओं, तिक्तताओं और कुरूपताओं का जो सामना नहीं कर सकते उनको भागने का दुस्साहस नहीं करना चाहिए ऐसी एक शिक्षा भी इस उपन्यास से मिलती है।

सतीश दीक्षा का प्रेम-विवाह भी अनेक प्रेमियों की भाँति असफल रहता, किंतु

वह सफल होता है दीक्षा के कारण अधिक पढ़ी-लिखी न होने के बावजूद दीक्षा में गहरी समझदारी है, धैर्य है, आपत्तियों का सामना करने का मादा हैं । सतीश में भावना है, आवेश और आवेग भी है, सत्य और प्रमाणिकता भी है, किंतु दीक्षा की भाँति वह संतुलन नहीं जो छोटे-छोटे पक्षियों में होता है। जीवन के कठिन, कठोर, अंतहीन से दिखनेवाले संघर्ष को झेलने के लिए एक संतुलित दृष्टि चाहिए जो दीक्षा में है, सतीश में नहीं।

सतीश और दीक्षा जब दिल्ली भागकर आते हैं, तो सतीश को अपने सहाध्यायी दिग्विजयी से बहुत आशा थी, परंतु कोलेज के दिनों का वह क्रांतिकारी वह नकसलवादी ऐनरजी Youngman अब चूहा बन गया है। जब दिग्विजय सिंह उन्हें कोई सहाय नहीं कर सकता तब त्यागीजी इन दोनों को एक छोटा-सा आधार देकर सामाजिक स्वीकृति की मोहर लगा देते हैं। त्यागीजी से सतीश का कोई ज्यादा परिचय नहीं था एक बार कुम्भ के मेले में अखबारी रिपोर्टींग के सिलसिले में इलाहाबाद में उनसे मिलना हुआ था। यह छोटी-सी मुलाकात सतीश-दीक्षा को बहुत काम आती है। त्यागीजी इस नव दम्पति को हर प्रकार का आधार और आश्वासन देते हैं। त्यागीजी के कारण ही शायद वे लोग दिल्ली में पैर जमा पाते हैं।

यह कहानी सतीश-दीक्षा के भागने की ओर फिर प्रेम-विवाह कर लेने भर की होती तो भी एक सतही प्रेमकहानी बनकर रह जाती किंतु यह उपन्यास सचमुच में उपन्यास बनता है। महानगर दिल्ली भी यथार्थ पृष्ठभूमि के कारण प्रो. हर्बट- जे.मूले ने उपन्यास के संदर्भ में कहा था- "A Novel is a representation of human experience whether idea or liberal and therefore unability to comment upon life"[३९]

प्रस्तुत उपन्यास भी जीवन पर की गई यथार्थ टिप्पणी बन जाता है, दिल्ली के यथार्थ वास्तविक वातावरण के कारण, इसमें महानगरीय जीवन की आपाधापी है, दौड़धूप है, भागदौड़ है। जहाँ एक तरफ अस्तित्व का संघर्ष है, वहाँ मध्यवर्गीय लोगों की प्रदर्शन-वृति का भी परिचय मिलता है। यहाँ बुद्धिजीवियों की भी hyppocracy है, औरतबाजी है, शराबखोरी है, छीनाझपट और महँगाई है। यहाँ ऐसे अभिजात-वर्गीय लोग मिलते है, जो एडवान्स कहे जाने के चक्कर में पतनोन्मुखी जीवन प्रणाली को लेकर चल रहे है। यहाँ दूसरों की मजबूरियों को बुनानेवाले गीध और गीदडनुमा

लोग है तो तगंहपली और आत्मप्रदर्शन के दो पाटों में पीसनेवाला मध्यवर्गीय है। यहाँ सिगारेटनुमावाली वस्तियाँ है, चारों तरफ चीख-व-पुकार हे, बेरोज़गारी की तपन है। ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली का यह महानगरीय सागर जीवन की कटुताओं की क्षारता को ही धारण कर रहा है , परंतु जैसे सागर में कहीं सच्चे मोती भी मिल जाते है। इस महानगर में भी संतोषीदेवी, त्यागीजी, मीना चावला जैसे कुछ सच्चे मोती हमें मिलते है। इन पात्रों के कारण ही हमारा मनुष्यता पर विश्वास बढ़ जाता है। प्रकृतिवादी उपन्यासकार जीवन की नग्नताओं और विरूपताओं को सामने लाता है। पर इतना भर करके वह रुक नहीं जाता अपने अनुभवपिंड की मृतिका से वह ऐसे पात्रों का निर्माण करता है, जिनसे जीवन के प्रति कोई आश्वसन हो सकता है।

००

मुर्दाघर : ---

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत मुर्दाघर महानगरीय जीवन के एक दूसरे कोण को उकेरता है। यह दूसरा कोण है महानगर मुंबई की झुग्गी-झोपड़ियों और फुटपाथों का जीवन महानगरीय जीवन के तीन पक्ष मिलते हैं -उच्चवर्गीय, अभिजातवर्गीय, वैभव और ऐश्वर्यमंडित किंतु मानवीय मूल्य का परिहास करनेवाला जीवन, अभावों और मयार्दाओं के दो पाटों के बीच पिसता हुआ मध्यवर्गीय जीवन और तीसरे झोंपड़पट्टी का स्तरहीन, मूल्यहीन-जीवन। प्रस्तुत उपन्यास में हमें यह तीसरे प्रकार का जीवन मिलता है, जो पाठक की चेतना को एक कड़वा और बदबूदार स्वाद दे जाता है । जयन्त ढड़वी के उपन्यास ''चक्र'' मंजुल भगत के ''अनारो'' तथा जैनेन्द्र के ''त्यागपत्र'' में हमें झोंपड़पट्टी के जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। हिन्दी का यह कदाचित प्रथम उपन्यास होगा, जिसमें झोंपड़पट्टी के जीवन को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी के कुछ आलोचकों ने इसे वैश्यावृति के साथ जोड़ा है- महानगरों की झोंपड़पट्टियों, झोंपड़पट्टियों में वैश्यावृति चलती है और प्रस्तुत उपन्यास में भी मैना, हसीना, मरियम, चमेली, सुभद्रा जैसी कई वैश्याएँ मिलती हैं, जो अपने पेट की आग बुझाने के लिए अपना शरीर बेचने के लिए विवश हैं, परंतु यह तो उसका एक आयामा है। ऐसी झोंपड़पट्टियों में दारू की भट्ठी वाले, बरेली मटका का जुगार चलाने वाले, जेब कतरे और पोकेट-मार, भिखारी, चोरों चक्के, बदमाश, होटलों की जूठन में

खाना ढूँढनेवाले बच्चे, आवारागर्दी करनेवाले दिशाहारा, मनचले छोकरे, चायवाले, छोटी-मोटी चीज़ों का वेपार करनेवाले गंदी घिनौनी सस्ती होटलवाले आदि कई किस्म के लोग मिलते हैं। महानगरों में एक तरफ ऊँची-ऊँची भव्य गगनचुम्बी इमारतें होती हैं। जहाँ की नियोन लाइटें रात में भी दिन का भ्रम पैदा करती है तो दूसरी तरफ ऐसी गंदी घिनौनी अंधकार पूर्ण बस्तियाँ होती है, जो जीवन की विषमता और बिद्रूपता की मानों हँसी उड़ाती है, उसे हम महानगरीय जीवन का कोढ़ कह सकते हैं। इस झोंपड़पट्टी में वैश्याओं का मोहल्ला है, जहाँ सुबह का दृश्य रातभर अमानवीय अत्याचार सहकर खाली पेट वैश्याओं के चाय पीने की इच्छाओं से शुरू होती है। यदि रात में ग्राहक नहीं फँसा, वह किसी दूसरे का मुँह ताकती हैं या चायवाले की खुशामद करती है। झोंपड़पट्टी में यह पायी जानेवाली वैश्याएँ देश के अलग-अलग कोने से यहाँ आती हैं। वे सब एक अच्छा जीवन चाहती थी आशाओं और भविष्य के सपनों को लेकर उनमें से कुछ धोखा और दगाबाजी का शिकार थीं। किसी अमानवीय षडयंत्र में फँसकर वे मुम्बई के इस नरक तक पहुँची थी वैसे तो अनेकों वैश्याओं का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है, किंतु मैना नामक वैश्या का ज़िक्र लेखक बार बार करता है। यह उपन्यास का एक प्रतीकात्मक पात्र है, जो मैना की कहानी है वह कमोवेश रूप से दूसरी वैश्याओं की भी कहानी है। पोपट नामक एक व्यक्ति के चुंगल में फँसकर वह इस नरक तुल्य झोंपड़पट्टी में पहुँची थी। एक स्थान पर मैना पोपट से कहती है- "क्या बोला था तू...धन्धा करेगा और पेट भरेगा मेरा। अब धन्धा करती में और पेट भरती तेरा।" [४०] तब पोपट उसे कहता है- "मेरी जिंदगानी में खाली एक बात है-तेरे को चाली में खोली ले के देना--तेरे को इधर से ले जाना। और मैं तेरे कूं बोलत मैंना याद रख ......एक दिन मेरा टैम जरूर आएगा.......तब तुम बोलना मेरे कूं...।" [४१] पोपट की भी यही इच्छा है वह भी मैना के साथ रहना चाहता है और उसके लिए कोई काम धंधा करने के बदले रातोरात अमीर हो जाने के सपने को देखता रहता है, वह सोचता है कि एक दिन उसका ऑकड़ा लगेगा और वह भी बड़ा आदमी बन जाएगा और इस बड़े होन के चक्कर मे वह छोटा भी नहीं रह पाता। अपनी पत्नी मैना से धंधा करवाना चाहता है और उसकी कमाई को दारू और जुए में फूँक देता है। मैना अपने भाग्य को कोसती है , झींकती है, कोसती है, रोती है, पीटती है। वह पोपट के साथ यह धिनौनी और गंदी जिंदगी जीने के लिए लाचार और बेवस है। वह रात-दिन पोपट के नाम को रोती है, उसे धिक्कारती

है, पर वही पोपट रेल में कटकर मर जाता है तब भी बसेरन को लेकर मुर्दाघर में जाती है और पोपट की लाश को लेकर आठ-आठ आसूँ रोती है। सच्चे मानवीय जीवन का दर्द और सत्य यहाँ दृष्टिगत होता है। यहाँ पोपट और जब्बर जैसे लोग हैं, जो छोटी-मोटी चोरियाँ करते हैं, किंतु लेखक ने इन लोगों को चोर बनानेवाले जो समाज में दूसरे लोग हैं उनकी ओर भी संकेत किया है। एक स्थान पर मैना हवालदार से कहती है "पुलीस का लोक तो रंडी लोक से भी खराब है। पैसा के वास्ते कुछ भी करेगा।"[४२] और जब्बार हवालदार से कहता है, हो तुम लोक चोर सबसे बड़ा चोर, तुम चोर तुम्हारा साब लोक चोर, तुम्हारा मिनिस्टर लोक चोर। साला तुम सबका पाइसा खाता।[४३] जब्बार भी अपनी पत्नी के साथ इसी बस्ती में रहता है उसकी बीबी वैश्या नहीं है, पर ऐसे माहोल में वह कभी भी वैश्य भी हो सकती है। जब्बार उसे इस माहोल से निकालना चाहता है, जिस प्रकार पोपट जुए का सहारा लेता है। जब्बार चोरी करता है, छोटी-मोटी चोरियों से कुछ नहीं होगा यह सोचकर वह बड़ा हाथ मारता है। किसी स्मगलर के यहाँ चोरी करता है, चोरी का माल छिपा देता है। पुलीस पकड़ लेती है और उसकी खूब पिटाई होती है, मरणतोल पिटाई पर वह टस से मस नहीं होता। एक दूसरा चोर उसे पुलीस की मार सहन करने का नुसखा भी समझाता है। वह जब्बार को यह भी कहता है कि दो नंबर की कमाईवालों के यहाँ कभी चोरी नहीं करनी चाहिए, उसका वह कथन- "किधर भी चोरी करना पन इस्मगलर..दारूवाला..रण्डीवाला.. इधर कभी भूलके भी नहीं जानेका नई तो पोलिस जान ले मार डालेगा मार मार के। कभी नहीं छोड़ेगा..सारा पोलिसखाता इधर से चलता।"[४४]

महानगरों की न्योन लाइटों से जगमग इमारतों के समानन्तर फुटपाथों पर लाखो करोड़ो मनुष्य बसते हैं, जो कीड़े-मकोड़ो की जिंदगी बसर करते हैं और जिनको समाज की जूठन के अतिरिक्त कुछ नहीं। समझा जाता ऐसे लोगों का एक सच्चा दस्तावेज मुर्दाघर में उपलब्ध होता है। मुम्बई महानगर की झोंपड़पट्टी को लेकर मराठी में "माहिम ची झोंपड़पट्टी" नामक उपन्यास उपलब्ध होता है। जयंत दढ़वी (दलवी) के "चक्र" का उल्लेख मैं ऊपर कर चुकी हूँ, उर्दू के सुप्रसिद्ध कथाकार कृष्णचन्द्र ने भी बम्बई के इस घृणित जीवन को अपने कथा साहित्य में उजागर किया है। के. अब्बास की एक फिल्म "शहर और सपना" भी इसी विषय को लेकर फिल्मायी गयी थी। प्रस्तुत उपन्यास में जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने झोंपड़पट्टी के बुझते हुए कोढ़युक्त जीवन को

ठोस और सपाट शैली में प्रस्तुत किया है। सभ्य समाज के सारे नैतिक मूल्य यहाँ धराशायी हो गए हैं। उपन्यास में निरूपित यथार्थ जीवन के चित्र को अंकित करते हुए डॉ. पारूकांत देसाई ने लिखा है- ''इसमें एक-एक, दो-दो, अरे अठन्नी या चाय ठर्रा के एक-एक कप में शरीर का सौदा करनेवाली, खड़िया के पाऊडर से चेहरों को थोपनेवाली, ग्राहक के लिए एक-दूसरे पर झपटनेवाली तथा गाली-गलौच करने वाली पर फिर दूसरे ही क्षण एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ देनेवाली मैना, पार्वती, लैला, नयना, मरियम, बशीरन, नूरज, हीरा, जमिला जैसी वेश्याएँ इसमें आत्माभिमानहीन शारीरिक श्रम से कतरानेवाले और दो नम्बर के व्यवसाय द्वारा रातोरात हाजी सेठ की तरह धनवान होने के स्वप्न में राचनेवाले पोपट जैसे जुआरी, शराबी, मवाली पति है जो केवल ढाई रुपये में मैना जैसी स्त्री की पत्नी के रूप में खरीदकर उससे पेसा करवाते हैं। इनके सपने बड़े ऊँचे हैं। उन्हें अपने फटे हुए कपड़े और टूटे हुए दरवाज़े नहीं दिखते। उन्हें दिखते हैं दो नम्बर की कमाई से क्रयित शानदार जिन्दगी जिसके पीछे अन्धी भाग दौड़ में कई बार रेल की पटरी पर कटकर उनके सपने बीच राह भीड़ में अंधे भिखारी के परचुरन की तरह बिखर जाते हैं; इसमें रहते हैं किस्तय्या जैसे शराबवाले-मटकेवाले जो पुलिस को किश्तें देकर खूनका पसीना करनेवाले मज़दूरों के पसीने की कमाई से किश्तों के सपने बाँटते हैं। उसमें आते है ऐसे मनचले जो वेश्याओं द्वारा पीटकर तथा बुरी तरह से अपमानित होकर भी मुफ्त में उनके शरीर से खिलवाड़ करने की ललक रखते है, इसमें लक्ष्मी जैन हिजड़े भी है, जो प्रकृत्या हिजड़ा न होकर भी कुछ न कर सकने के आसामर्थ्य में इस व्यवस्था को अपना लेते है, इसमें शरणागत असहाय वैश्याओं को आश्रय देनेवाले मानवतावादी मर्द-हिजड़े भी हैं तथा वेश्याओं को भीतर से चाहकर बाहर से दुतकारने वाले सभ्य समाज के पुरूष हिजड़े हैं।

इसमें मिकदार गंदगी पर भिनभिनाती मक्खियों जैसे गन्या, राजू- मुहम्मद, गोपू, सोन्या जैसे बच्चे हैं जो होटल के उच्छिष्ट कचरे में रोटी, पाऊँ या हड्डी के एकाध टुकड़े को पा जाने से अपने को भाग्यशाली समझते हैं। पेट की यह दोहरी आग की लपट उन्हें कोढ़ियों और भिखारियों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर देती है।'' [४५]

लेखक ने इसमें तीखे, कटु यथार्थ का कुछ चित्र भी प्रस्तुत किया है। मरियम की पुत्र प्राप्ति का कोई आनंद नहीं, क्योंकि ऐसी अवस्था में वह धंधा नहीं कर सकती, बशीरन को अपने बुढ़ापे की चिंता खाए जा रही है, क्योंकि तब उसे पुलिसवाले पकड़ेगे

नहीं और जो जेल में कभी-कभी अच्छा खाना मिल जाता है वह भी नसीब नहीं होगा। जिंदगी भर मैना की कमाई खानेवाला पोपट के शव का एक मूल्य होगा । मुर्दाघर का एक कर्मचारी कहता है- ''पोपट का शव न छोकरा लोग जो इधर पढ़ने के वास्ते आता...उनका काम में आ जाएँगा। हड्डी का भाव जास्ती है आजकल। पूरा जिस्म का ढाँचा का भाव तीन सौ रुपया चलता है।''[४६]

००

कड़ियाँ : ---

''कड़ियाँ'' आधुनिक हिन्दी के सुपरिचित कथाकार भीष्मसहानी का एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें दाम्पत्य-जीवन की कड़ियाँ एक बार टूटती हैं ता फिर टूटती ही चली जातीं हैं, इसमें टूटते परिवारों के मानसिक तनावो और इन सब में निरीह निर्दोष शिशु की व्यथा-कथा को लेखक ने मर्मस्पर्शी ढंग से आकंलित किया है। इस बिंदु पर यह उपन्यास मन्नूभण्डारी कृत ''आपका बण्टी''से समानता रखता है, किंतु ''आपका बण्टी''के केन्द्र में बण्टी है। यहाँ पर उपन्यास के केन्द्र में है उसकी नायिका प्रमिला का छिन्न-भिन्न जीवन। प्रमिला के दाम्पत्य जीवन की असफल परिणति के पीछे महानगरीय जीवन का परिवेश एवं दबाव कारणभूत हैं। मनुष्य और उसकी मूलभूत वृतियाँ तो सर्वत्र समान होतीं हैं, परंतु सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण उसकी परिजातियाँ बदलती रहती हैं। प्रमिला और महेन्द्र के जीवन या कस्वायै वातावरण में शायद न हो पाता।

प्रस्तुत उपन्यास में व्यक्तिवादी चिंतन के कारण प्रेम और परिवार विषयक मान्यताएँ किस प्रकार चरमरा रही हैं, उसका सफल निदर्शन लेखक नें करवाया है। उपन्यास का नायक महेन्द्र व्यक्तिवादी है, वह आधुनिक जीवन की चमक दमक उसकी चेतना पर हावी है। उसकी पत्नी प्रमिला एक सीधी सादी घर और परिवार में आस्था रखनेवाली, बच्चों में खोयी रहनेवाली घरेलू किस्म की गृहिनी है । वह सुंदर है, परंतु पति को सम्मुख भी इस सुंदरता का प्रदर्शन करना चाहिए , आधुनिक जीवन की इस बिडम्बना को वह समझ नहीं पाती है। सेक्स के प्रति उसका दृष्टिकोण स्वस्थ वैज्ञानिक एवं आधुनिक नहीं है। बुर्जुआ परम्परा की स्त्रियों की भाँति वह भी उसे गोपनीय, सामान्य और कभी-कभी घृणित भी समझती है। उसके माँ-बाप के यहाँ उसे जो वातावरण

और संस्कार मिले थे उसके कारण सेक्स के प्रति उसमें कुछ-कुछ विरक्ति-सी पैदा हो गयी थी। पति से ज्यादा वह अपने बेटे पप्पु का ध्यान रखती है। उस बेचारी को यह मालूम नहीं कि इस उपभोक्तावादी संस्कृति में पत्नी धर्म भी एक स्पर्धा का विषय बन गया है और यहाँ भी पति को अपने वश में रखने के लिए पत्नियों को निरंतर बनाव, शृंगार करना पड़ता है। प्राचीन जीवन-मूल्यों में जीनेवाली नारी यह समझती है कि यह तो रूप जीवनियों का काम होता है, परंतु अब बदलते संदर्भों में नारी यदि इस दिशा में उदासीनता बरतती है तो उसके दाम्पत्य जीवन पर संकटों के बादल गिरने लगते हैं, और यही प्रमिला के साथ होता है। प्रमिला के ठंडे व्यवहार के कारण, बनाव, शृंगार में उदासीनता के कारण, महेन्द्र की अपनी व्यक्तिवादी सोच और भ्रमरवृति के कारण वह उसकी ही ओफिस में काम करने वाली कैशियर मिस सुषमा के प्रति आकृष्ट होता है। सुषमा की अपनी कुछ पारिवारिक प्रतिबद्धताएँ हैं जिसके कारण वह वैवाहिक जीवन जी नहीं सकती थी। वह सैक्स को शरीर, की एक आवश्यकता समझती है और ''वे दिन'' की डायना की भाँति उसकी पूर्ति किसी मनभावन व्यक्ति से प्रेम कर लेना चाहती है। घुट-घुट की जीना उसे पसंद नहीं है। अतः अपनी सुविधा के लिए और अपनी कामनाओं की प्रर्ति के लिए महेन्द्र का वरण करती है। वह महेन्द्र से कहती है कि तुम्हारे वक्त से जो घड़ियाँ टूटकर मेरी गोद में पड़ जाएँ मैं उन्हीं से संतुष्ट हूँ।[४७] शनैः-शनैः बदलते संदर्भों में महानगरीय जीवन में कामकाजी महिलाओं के भीतर एक ऐसा वर्ग विकसित हो रहा है, जो वैवाहिक जीवन के उत्तरदायितवों से कतरा रहा है। इस वर्ग की युवतियाँ किसी वैवाहिक पुरूष से मैत्री स्थापित कर अपने जातिय जीवन की आकांक्षाओं की आपूति कर लेती है। ''टेराकोटा की मीति और कड़ियाँ''की सुषमा को इस, वर्ग में रख सकते है। ''पचपन खम्भे लाल दिवारें की सुषमा की भी स्थिति लगभग इस प्रकार की है। किंतु वह इस समझौतावादी भूमिका तक अभी नहीं पहुँच पायी हैं।''

यौन-शोषण महानगरीय जीवन का एक पक्ष है। ग्रमाणी और कस्बायै विस्तारो में यौन शोषण का एक दूसरा रूप मिलता है। वहाँ जमीनदार और पूँजी पति वर्ग के लोग निम्नजाति की स्त्रियों का यौन शोषण करते हैं। महानगरीय जीवन कें स्त्रियों का जो यौन शोषण होता है, वहाँ जातिवादी समीकरण नहीं आता, यहाँ वर्गवादी समीकरण आता है। बड़े वर्ग के ओफिसर अपने अंर्तगत कामकरने वाली महिलाओं का यौन शोषण करते हें। सुषमा और महेन्द्र के संबंध उसी प्रकार के है। खैर, महेन्द्र को तो सुषमा

चाहती भी है, परंतु डिप्टी डायेरक्अर वर्मा तो लगभग बूढ़े हो गये उनके साथ प्रेम करने के लिए विवश है। उनके साथ प्रेमालाप करने में तो उसे मतली-सी आती है।[४८] परंतु अपनी नौकरी की सलामती के लिए सुषमा को यह भी करना पड़ता है।

"हर जिंदगी किसी न किसी खूँटे से बँधी रहे तो वह अपना सन्तुलन बनाए रखती है, खूंटा टूट जाए तो जैसे अधर में लटक जाती है।"[४९] महेन्द्र की भी जिंदगी भी अपना संतुलन खो बैठती है। एक बार दाम्पत्य जीवन की कड़ियाँ टूटती है तो सुषमा भी उसे संभाल नहीं पाती। उसका प्रेम क्रमशः में वह अपने समकक्ष अधिकारियों की पत्नियों पर डोरे डालना शुरू करता है। महेन्द्र का मिसेज भगत की ओर झुंकना इसी प्रवृति का धोतक है। इस प्रकार की यौन उशृंखलता महानगरीय जीवन के अँधेरे पक्षों को प्रगट करती है। कस्वायै वातावरण में यह उतना संभव नहीं है।

उपन्यास की नायिका प्रमिला पागल हो जाती है। दिन-भर सड़ाकों पर चक्कर काटती रहती है। महेन्द्र के मित्र तोट के प्रयत्नों के फल स्वरूप प्रमीला और महेन्द्र में कुछ समय मेल हो जाता है। भावावेश के क्षणों में दोनों वासना के प्रवाह में बह जाते है। प्रमीला को गर्भ रहता है, परंतु महेन्द्र उसे स्वीकार नहीं करता। वह प्रमीला पर संदेह करता है कि पागलपन की अवस्था में न जाने कितने लोगों से उसके संबंध रहे होगें। स्वयं चरित्रहीन होने के कारण वह पत्नी को भी उसी दृष्टि से देखता है। अपने पुत्र पप्पु के कारण प्रमीला पागल हो गयी थी। अतः दूसरे पुत्र को पाकर वह पुनः साधारण हो जाती है। प्रमीला के पिता नारंग अपनी वीमे की सात हज़ार की राशि प्रमीला को देता है। इन रुपियों से प्रमीला दवाईयों की दुकान खोल लेती है। इस प्रकार आत्मनिर्भर होकर स्वाभिमान से जीवन-यापन करती है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने महानगरीय जीवन में बढ़ते हुए व्यक्तिवाद के दुष्परिणामों को रेखांकित किया है। व्यक्ति स्वतंत्रता कहने-सुनने में एक बड़ा सुंदर शब्द लगता है, परंतु जिस देश में करोड़ों लोग गरीबी-रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहें हों वहाँ यह शब्द छलावा-मात्र रह जाता है। "पश्चिम में भी इसकी बड़ी कीमत चुकायी है और हमें भी चुकानी पड़ सकती है। अनके पप्पू और प्रमीलाएँ इसके शिकार हो रहे हैं।" प्रस्तुत उपन्यास महानगरीय जीवन के इस घृणित पुष्टमयीपक्ष को उद्घाटित कर रहा है।

००

तत्सम (राज़ी सेठ) : ---

हिन्दी की नवोदित लेखिकाओं में राज़ीसेठ का अपना एक अलग स्थान है। उनके उपन्यास तत्सम में हमें महानगरीय जीवन के उच्च-मध्यवर्गीय जीवन का खुलापन उसकी निर्द्वन्द्वता, आर्थिक पक्षों के प्रति निश्चिन्तता के बावजूद व्यावसायिक व्यस्तता जैसे अभिलक्षण दृष्टिगत होते हैं। तत्सम की नायिका वसुधा कालेज में लेकचरर है। उसका पति निखिल एक बिज़नेसमैन है। दोनों पक्ष धनी सम्पन्न है। रुपया, पैसा तथा रोज़ी रोटी का यहाँ प्रश्न नहीं है, किंतु वसुधा के जीवन की त्रासादी वहाँ से शुरू होती है, जब उसके पति निखिल की कार दुर्घटना में मृत्यु होती है। उच्चशिक्षा तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण वसुधा के जीवन में उस दयनीयता के दर्शन नहीं होते तो आम भारतीय विधवा में होते हैं। परंतु वसुधा के लिए यहाँ समस्या दूसरे प्रकार की है। घर-परिवारवालों का असहज असामान्य व्यवहार उसे हरक्षण इस बात की स्मृति दिलाता है कि वह अब दूसरों की सहानुभूति और अनुकम्पा का पात्र बन गई है। वसुधा सुंदर है; युवा है, अभी उसे कोई "issue" नहीं है। फलतः घर परिवारवाले उसके पुनर्विवाह पर ज़ोर दे रहे है यहाँ भी वसुधा को यह बात कचोटती है कि अब उसके पास चुनाव की श्रेष्ठता का अधिकार नहीं है। पीठ पीछे अपने घरवालों के मुँह से ही उसने सुना था कि अब वह पहेलेवाली बात थोडी है। सज धजकर लोगों के आगे एक चीज़ की तरह प्रस्तुत होने में उसे हीनता का अनुभव होता है। "लोग आते है, जाते हैं, नापते हैं, तोलते हैं। कौंचते हैं, लहुलुहान करते हैं।"[५०]

वसुधा की इस कथा कि समानान्तर विवके और शिरीन की कथा है। विवेक शिरीन एक दूसरे को चाहते थे। शिरीन को विवके से गर्भ रह जाता है, तब विवेक शिरीन से विवाह की बात करता है, किंतु शिरीन विवेक को समझाती है कि वह अपना पी.एच.डी. की पढ़ाई पूरी कर ले। शिरीन सोचती है कि यदि उसके पिता विवाह का विरोध करेंगें तो उनको आर्थिक संघर्षो से जूझना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में वह अपना शोध कार्य नहीं कर पाएगा। दूसरे डॉक्टरेट की उपाधि के बाद शायद उसका पिता भी उतना विरोध न करे । फलतः शिरीन गर्भपात करा लेती है, जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है।

विवेक और वसुधा एक दूसरे को जानते थे। एक-दूसरे के अच्छे मित्र थे।

पहले वसुधा के घरवालों की तरफ से उसे प्रस्ताव भी भेजा गया था, किंतु उस समय विवेक शिरीन को चाहता था। अतः उसने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था।

बावजूद इसके वसुधा और विवेक की मैत्री बनी रहती है। निखिल और शिरीन की मृत्यु के बाद इन दो समदुखियों के बीच में प्रेम का झरना भी कदाचित प्रस्फुरित होता और विवाह की ग्रंथि में शायद वे बंद भी जाते, परंतु घरवालों की झिक्-झिक् से परेशान होकर वसुधा दक्षिण भारत की यात्रा पर चल पड़ती है और यहाँ से कहानी तीसरा मोड़ लेती है।

दक्षिण भारत की यात्रा के दरम्यान वसुधा बुरी तरह से बीमार हो जाती है। उस समय आनंद नामक एक युवक उसकी जी-जान से सेवा करता है। इस घटना के कारण आनंद वसुधा के निकट आता है। वसुधा निलक्षण प्रतिभा-संपन्न है। सुंदर और सलीकेदार है। अतः आनंद भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। वह वसुधा को चाहने लगता है और उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव भी रखता है, किंतु दूसरी तरफ वसुधा को सोचने के लिए पर्याप्त समय देता है। वह उसकी प्रतीक्षा के लिए तैयार है।

दूसरी तरफ वसुधा जब घर पहुँचती है तब उसे विवेक का पत्र मिलता है, जिसमें उसने भी विवाह का प्रस्ताव रखा है। वसुधा विवेक के बारे में आनंद को साफ-साफ लिख देती है, जिसके प्रत्युत्तर में आनंद लिखता है- ''इस कठिनाई में मैं तुम्हें गलत नहीं समझूँगा, आश्वासन देता हूँ। तुम अपने किसी भी फैसले के लिए पूरी तरह स्वतंत्र समझो। स्वतंत्रा किसी की भी हो, मेरे लिए सम्मान की चीज़ है, तुम्हारी तो और भी अधिक। उसके तहत किया गया कोई भी फैसला मुझे मान्य होगा।''[५१] आनंद के इस पत्र के कारण वसुधा उसे और भी चाहने लगती है और अंततः वह आनंद से विवाह करने का निर्णय करती है। इस प्रकार एक बार विवेक ने मना किया था, शिरीन के कारण, अब वसुधा विवेक को मना करती है आनंद के प्रेम के कारण। दो स्थिति ''तत्सम'' हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में सार्थक टिप्पनी करते हुए डॉ. राजरानी शर्मा लिखती हैं- ''शायद ही किसी उपन्यास में दुर्घटना ने इतना सृजनशील रूप धारण किया हो और विधवा को न केवल अन्तर्मुख बनाया हो बल्कि सत्व की पहचान करने को बराबर उकसाया हो। लेखिका ने वसुधा की अन्तर्मुखी यात्रा को भारतीय मध्यवर्गीय समाज और परिवार की विधवा के प्रति दो भिन्न दृष्टियों की व्यावहारिक मांसल नींव भी दी है

और तथाकथित प्रगतिशील दृष्टि की स्थूल वहिर्मुखता को भी उजागर किया है।...भारतीय स्त्री की पति-निष्ठा और उसकी सार्थकता पर बड़े महत्वपूर्ण संवाद हैं जो उपन्यास की नींव में महत्वपूर्ण बन गये हैं। शिक्षित और मेधावी वसुधा के मन पर पड़े भारतीय संस्कारों का- अतीत के प्रति निष्ठा, पति के प्रति सतीत्व के भाव का सशक्त चित्रण किया है। परंपरा की इस सुदृढ़ संस्कारशील बैठक के कारण ही वसुधा का चरित्र एक प्रगतिशील क्लासिक चरित्र बनता है। परंपरा के पूरे दायित्व को जानते हुए तत्सम की नायिका परंपरा और आधुनिकता का गंगा-जमनी मेल करने में समर्थ होती है।''[५२]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय परिवेश के अतिरिक्त उच्च मध्यवर्गीय जीवन में कुछ आयामों को विश्लेषित करने का कलात्मक यत्न हुआ है।

००

पतझड़ की आवाज़े (निरुपमा सेवती) : ---

पतझड़ की आवाज़े निरुपमा सेवती का महानगरीय जीवन की विभीषिकाओं को चित्रित करनेवाला उपन्यास है। निरुपमाजी के संदर्भ में कहा गया है - ''नारी-शोषण, मध्यवर्गीय संघर्ष, निम्नावर्गीय जीवन की नारकीयता, उच्चवर्ग की उपभोक्ता-मनोवृति और इन सबके बीच नारी-चेतना, नारी-अस्मिता और उसके गौरव के लिए निरंतर संघर्षशीलता उनके लेखन के नुकीले आयामों को व्यंजित करती है।''[५३] प्रस्तुत उपन्यास उनके इस लेखकीय कृतित्व और संघर्ष को खराद पर चढ़ानेवाला उपन्यास है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने अनुभा और सुनीला के माध्यम से महानगरीय जीवन संघर्षमयी आयामों को प्रस्ततु किया है। इसमें दिल्ली के माहनगरीय परिवेश को उकेरा गया है। उपन्यास की नायिका अनुभा डाक मध्यवर्गीय परिवार की स्नाभिमानी युक्ति है। उसका परिवार उस स्थिति में नहीं है कि वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके। विपरीत पारिकरिक स्थितियों के बावजूद वह बी.ए. में दाखिला ले लेती है। अनुभा एक संघर्षशील नारी है। बुद्धि-प्रतिभा के साथ-साथ उसमें कठिन परिश्रम करने का माद्दा भी है। कॉलेज की शिक्षा के साथ-साथ वह टाईपिंग का कोर्स भी कर लेती है, किंतु घर-परिवार की आर्थिक विवशताओं और पिता की दयनीय स्थिति के कारण अंततः वह

बी.ए. की पढ़ाई छोड़ने पर बाध्य होती है। पढ़ाई को छोड़कर वह नौकरी करने लगती है, परंतु उसका संघर्षशील चरित्र ना हिम्मत नहीं होता। नौकरी के साथ-साथ वह पढ़ाई भी जारी रखती है।

अनुभा की सगाई उसी ही की जाति के रमणेश नामक युवक से होती है। अनुभा के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। अतः दरिद्रता के कारण उसके परिवार को एक ऐसे स्थान पर रहना पड़ता है, जिसे सामाजिक लिहाज़ से अच्छा नहीं कहा जा सकता। उसका परिवार जिस मकान में रहते है, जिसके ऊपरी तल्ले पर वेश्याओं का कोठा था। रमणेश दो-एक बार इसका ज़िक्र भी करता है, पर अनुभा वहाँ रहने के लिए विवश है क्योंकि किसी अच्छे विस्तार में इतना सस्ता किराये का मकान असंभव है। इस वांच्छित स्थान के कारण अनुभा और रमणेश का संबंध टूट जाता है।

अनुभा जिस ऑफिस में काम करती है, उसके बोस धीरेन वर्मा है। अनुभा के साथ उनका व्यवहार बहुत ही शालीन और प्रेमपूर्ण है। वर्माजी के मृदुवत्स के स्वभाव के कारण अनुभा को कुछ राहत मिलती है। लांछित परिवेश के कारण वह अपना घर भी छोड़ देती है और होस्टल में रहने लगती है। अनुभा के तप्त, दाघ जीवन में धीरेन वर्मा का प्रेम एक मरूदीप के समान है, किंतु धीरेन वर्मा विवाहित हैं और अनुभा से कभी विवाह नहीं कर सकते, परंतु कदाचित अनुभा को उससे अधिक की आकांक्षा भी नहीं है। वह तो केवल इतना चाहती है कि वर्माजी का सौहार्द उसे मिलता है। अनुभा का यह समय कुछ सुख और शांति से बीतता है, किंतु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती। वर्माजी नौकरी छोड़कर व्यवसाय में पड जाते हैं। वर्माजी जितने ही शांत और संतोषी जीव हैं, उनकी पत्नी उसके दूसरे छोर पर है। उनकी पत्नी को थोड़े में संतोष नहीं होता और व्यक्ति आदि प्रामाणिक हो तो नौकरी की बंधी आमदनी में कोई भी व्यक्ति वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। वर्माजी की पत्नी को वैभवपूर्ण जीवन का आर्कषण है। यह भी महानगरीय जीवन का एक पक्ष है कि यहाँ भौतिक समृद्धि के लिए व्यक्ति निरंतर संघर्षरत रहता है। यह अँधी दौड़ मनुष्य को कहीं साँस नहीं होने देती। स्पर्धा में निरंतर भागना उसकी नियति हो जाती है। वर्माजी तो सुख और समृद्धि की

होड़ में स्वयं को व्यवसायिकता में झोंक देते हैं, किन्तु उसके साथ ही साथ अनुभा का चैन और सुकून भी खत्म हो जाता है। वर्माजी के स्थान पर अनुभा का ही एक सहकार्यकर प्रमोशन पाकर आता है। ऑफिस में लोग उसे सी.के. के नाम से जानते है। वर्माजी जितने शांत, सुसील, शालीन स्वभाव के थे सी.के. उनका विलोम है। वह अनुभा को पी.एस. का पद आफर करता है, परंतु उस आफर के बदले में जो शरतें वह अनुभा के सामने रखता है वह उसके स्वाभिमान के खिलाफ है। अनुभा केवल अपनी योग्यता के आधार पर बढ़ना चाहती है, परंतु सी.के. की दृष्टि में इन चीज़ों का कोई मूल्य नहीं है। अतः जो स्थान उषा को मिलता है। उषा एक अत्यंत महत्वकाक्षी, स्वार्थी और चरित्रहीन महिला है। अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए वह मर्यादा की किसी भी सीमा को लाँघने के लिए तैयार है। वह तो खुले आम कहते है, ''इस मर्द जात के साथ तभी सोओ, अगर माल हासिल होता हो या पोजीशन हासिल होती हो।''[५४] अपनी जवानी और शरीर को बुझाते हुए कामचोर और कार्यकुशल होते हुए भी सी.के की पर्सनल सेक्रेटरी बन जाती है। अल्पवेतन होते हुए भी नैतिक-अनैतिक तरीकों से खूब कमाती है। बड़ी-बड़ी दावतें देती हैं। अतिथियों को मंहगी आयातित शराब पिला सकती है। ये डिनर पार्टियों, कोक टेन पार्टियाँ, टी पार्टियाँ आधुनिक महानगरीय जीवन के विविध आयाम है। जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने व्यवसायिक संबंधों को बढ़ाते है। सी.के. साथ सब प्रकार के संबंध होते हुए भी वह एक अन्य पुरूष से विवाह भी कर लेती है। उषा जैसी स्त्रियों के लिए विवाह कोई पवित्र संबंध नहीं होता, वह सामाजिक संबधभर होती है। ऐसी महिलाँए किसी के भी प्रति एकनिष्ठ नहीं होती। आधिकारी इनके निकट सफलता की सीढ़ी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। महानगरीय जीवन में यह सब सहजरूप से होता रहा है। उसमें किसी को अघटित या अवांच्छित भी नहीं लगता। प्रस्तुत उपन्यास की उषा की तुलना हम 'चिड़ियाघर'की मिसेज रिजवी के साथ कर सकते हैं। उषा की भाँति मिसेज रिजवी भी कहती है कि - ''आराम से नौकरी करने के लिए अफसर को कब्जे में रखना चाहिए और अफसर को कब्जे में रखा जा सकता है- स्वयं बेवकूफ बनकर या अफसर को बेवकूफ बनाकर।''[५५]

प्रस्तुत उपन्यास का एक दूसरा नारीपात्र है सुनीला। उसके पिता की मृत्यु हो चुकी है और माँ सन्यासिनी हो गयी है। ऐसी स्थिति में वह भाई-भाभी के संरक्षण में रहती है। सुनीला एक उच्चवर्गीय महिलए है। वह अनुभा की ऑफिस में रिसेप्शनिस्ट का कार्य करती है। नौकरी उसकी आर्थिक मजबूरी नहीं, मानसिक मज़बूरी है। वह अपने भीतर के खालीपन को भरने के लिए करती है। उसे विजय नामक एक युवक से प्रेम था। विजय से उसे गर्भ रहता है, परंतु वह शिशु के दायित्व को नकारता है, परिणामस्वरूप सुनीला विजय के प्रति वितृष्णा से भर उठती है। घर के कटु वातावरण, निष्क्रियता की बोरियत तथा प्रेम वंचकता के आघात से बचने के लिए वह नौकरी करती है, परंतु उसके भाई-भाभी को यह स्वीकार्य नहीं कि सुनीला नौकरी करे क्योंकि वह उनके स्टेटस के खिलाफ है। अतः वे जबरदस्ती सुनीला की नौकरी छुडवा देते है और उसका विवाह करवा देते है। विवाह के उपरांत सुनीला को यदि ढंग का पति मिलता तो उसकी जिंदगी कदाचित व्यवस्थित ढंग से चलती, परंतु सुनीला को एक निहायत ददियान्यूस और बुर्जवा ख्यालों का पति मिलता है। जो स्त्री को एक संपत्ति समझता है। अधिकार भावना उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है। ऐसी स्थितियों में सुनीला उसे अधिक समय तक बर्दाशत नहीं कर पाती और अंत में नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है।

सुनीला की इस परिजाति के संदर्भ में Dr.मधुरेश को लगता है कि कदाचित निरूपमाजी प्रस्तुत पात्र का सम्यक निर्वाह नहीं कर पाई है -"ऐसा लगता है कि लेखिका जैसे एकदम शुरू में ही इसे तय नहीं कर सकी है कि यह कहानी सिर्फ अनुभा की कहानी होती है या कि सुनीला और वैसी ही दूसरी युवतियों की भी।"[५६]

परंतु ऐसा नहीं है। मुख्यतः यह कहानी अनुभा की है। सुनीला का पात्र तो उसकी विसदृशता (कोन्ट्रास्ट) में लाया गया पात्र है। दोनों पात्र की ट्रीटमेण्ट ही भिन्न-भिन्न किस्म की है, परिवेश भिन्न है। सुनीला बाहर से आधुनिक, बिन्दास्त लगती है, बात-बात में ठहाके लगाती है। परंतु भीतर से वह उतनी ही संवेदनशील है। ऊपरी तोर पर उसका रवैया लापरवाही का है, परंतु अन्दर ही अन्दर वह घुटती रहती है। अतर सुनीला की परिणति उसकी

गठन के अनुरूप हैं। [५७]

सुनीला के चरित्र बनावटी, आरोपित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आयेदिन हम अखबारों में पढ़ते हैं कि कई उच्चवर्गीय महिलाएँ महानगरीय जीवन के संत्रास, घुटन, अकेलेपन और रितेपन से त्रस्त होकर मौत की नींद सोना पसंद करती है।

डॉ.पुष्पा बंसल ने अनुभा के संघर्ष को लेकर प्रश्न उपस्थित किया था कि ''एक सामान्य चार सौ रुपया पानेवाली बी.ए. से कम पढ़ी टाईपिस्ट लड़की का यह संसार नहीं हो सकता। अतः इसमें चित्रित पात्र आज की सामान्य नारी के प्रतिनिधि नहीं बन पाए हैं।''[५८] डॉ.पुष्पा बंसल के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए डॉ.देसाई ने लिखा है - ''यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य होगा कि उपन्यास का प्रकाशन अंतराष्ट्रीय महिलावर्ष, अर्थात् १९७६ में हुआ है और उस समय चार सौ रुपये भी काफी हुआ करते थे। उस समय कालेज के व्याख्याता तक का वेतन पाँच सौ-छः सौ हुआ करती थी। दूसरे संघर्ष की क्षमता सुविधाभोगी उच्च वेतन धारियों की तुलना में निम्न मध्यवर्ग के लोगों में अधिक होती है। मन्जुल भगत की अनारो तथा जोदान की धनिया को लोग भूलें नहीं होंगे। तभी तो अनुभा की तुलना में सुनीला कमजोर सिद्ध होती है। ''पतझड़ की आवाज़े पैदा करनेवाली परिस्थितियाँ इन दोनों पात्रों में भिन्न प्रकार की हैं।''[५९]

अनुभा को अपने इस स्वाभिमान की रक्षा के लिए दो-एक नौकरियाँ भी छोड़नी पड़ती हैं। इसमें उसको तरह-तरह के कटु-अनुभव होते है। वह देखती है कि प्लास्टिक वर्क्स के छोटे-से कारोबार का मालिक अपनी स्टेनो को खींचकर जांघ पर बिठा लेता है।[६०] शहर के प्रख्यात सोलिसिटर का पुत्र अपनी टाइपिस्ट को छुट्टी के बाद किसी न किसी बहाने से देर रात तक अपने केबिन में रोके रखता है।[६१] महानगर के इन कटु अनुभवों से गुज़रते हुए अनुभा के मन में एक प्रश्न हमेशा उमड़ता-घुमड़ता रहता है कि महिला के लिए नौकरी का अर्थ क्या आत्मसम्मान को तिलाँजलि देना होता है ? वह सोचते है कि यह सब उपभोक्ता-सभ्यता के कारण हो रहा है। इस तथाकथित उपभोकता संस्कृति के चलते जब अधिकारी-कर्मचारी के संबंधों में लालच

और बंचना, माँग और शरीर आ जाते हैं, तब इनके बीच योग्यता भी क्या सीमत रह जाती है ? नारी का मान, इन्सान का मान कहाँ रह पाता है ? [६२] और स्त्री की स्थिति तब और भी शोचनीय हो जाती है । जब अपने किसी परिवार-जन द्वारा वह पुरूष की कामाग्नि में समिधा की भाँति झोंक दी जाती हैं । [६३]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, प्रस्तुत उपन्यास में नारी शोषण के परिप्रेक्ष्य में नारी शोषण के विभिन्न आयामों को रेखांकित किया गया है । साथ ही साथ महानगरीय जीवन के संत्रास, पीड़ा, अकेलेपन और उसकी मूल्य हीनता और दिशाहार स्थिति को भी उसकी यथास्थिति में अनवेक्षक दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

००

बँटता हूआ आदमी (निरुपमा सेवती) :---

खंडित और विभाजित व्यक्तित्व आधुनिक महानगरीय परिवेश के व्यक्ति का एक अभिलक्षण है । महानगरीय जीवन में पुरानेजीवन मूल्यों का भी छेद उड़ रहा है । यहाँ 'ठीक आदम कद' व्यक्ति का मिलना वा मुश्किल है । निरुपमा सेवतीजी ने बँटता हुआ आदमी उपन्यास में इस खंडित विभाजित मानसिकता को सुनन्दा, शरद, धीरज जैसे पात्रों के द्वारा उकेरा है ।

ऋषभचरण जैन, के कतिपय उपन्यास तथा पाण्डेय बेचेन शर्मा ''उग्र''के''फागुन के दिन चार'' उपन्यास में मोहमयी फिल्मी नगरी बम्बई के फिल्मी परिवेश के वस्तु को लिया गया है । यदि साठोत्तरी उपन्यासों की बात करें तो डॉ.राही मासूम ''रज़ा'' के ''दिल एक सादा कागज'' तथा सत्येन्द्र शरद के उपन्यास ''क्लोज-अप'' में भी फिल्मी-परिवेश को औपन्यासिक आयाम प्रदान किया है । अस्थिरता और अनिश्चितता फिल्मी जगत के दो घिनौने पहलू हैं । फलतः अनैतिकता, चरित्रहीनता, अप्रमाणिकता, स्वार्थान्धता जैसे प्रति-मूल्य (anti-value) यहाँ सहजतयाः उपलब्ध होते हैं । पति-पत्नी के संबंधों के बीच यहाँ ''बाज़ार'' आ गया है । मानवीय संबंधों का स्थान अब पैसे ने ले लिया है । रिश्तों की उष्मा और ऊर्जा शनैः शनैः रिश्ती जा रही

है। जिन मूल्यों के लिए पुराना आदमी, किन्हीं अर्थों में देहाती आदमी जहाँ मरने-मारने पर उतारु हो जाता था, वहाँ अब वद "ठण्डे समझौतों को करने लगा है, इतना ही नहीं प्रत्युत वेहयाई के साथ उसका इकरार भी करने लगा है।"

"क्लोज-अप" का अयोध्या अपनी पत्नी शारदा के संबंध में कहता है जो किसी सेठ के यहाँ भाग गई है- "मेरा घर छोड़कर एक सेठ के यहाँ बैठ गई है। अच्छी पार्टी फाँसी है न उसने।"[६४] यहाँ आश्चर्य इस बात से होता हैं कि यह बात क्रोधावेश या व्यंग्य-विद्रुप में न कहकर, बहुत सहजता से कह, गया है। शैलेष मटियानी के उपन्यास "रामकली"की रामकली भी अपने पति को छोड़कर एक बिल्डर के घर में रहने लगती है , परंतु उसमें उसके पति बसंत का कोई दोष नहीं था पर रामकली के मन से भौतिक ऐश्वर्य की चकाचौंद ऐसी छायी हुई थी जो उसके लिए इसे प्रेरित करती है।

"बँटता हुआ आदमी" पतझड़ की आवाज़े के निलोमी बिंदु पर स्थित है। पतझड़ की आवाज़े की अनुभा नौकरी और प्रमोशन के लिए जहाँ किसी प्रकार के समझौते के लिए प्रस्तुत नहीं होती, वहाँ बँटता हुआ आदमी उपन्यास की नायिका सुनन्दा को पग-पग पर अपने घर-परिवार के लिए "देह का चेक" को भुनाना पड़ता है।[६५] डॉ.रोहिणी अग्रवाल ने प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखा है- "देह को माध्यम बनाकर अर्थोपार्जन करना 'बँटता हुआ आदमी' की सुनन्दा की भी विवशता है। सुनन्दा का साथ परिवार-माँ, भाई व बहनें उसके अपने हैं। माता पिता अपने नहीं हैं। उसके अपने पिता उसके बाल्यकाल में स्वर्ग सिधार गये थे। सुनन्दा की माँ अपने चार बच्चों के कल्याण या गरीबी से परित्राण पाने के लिए एक ही उपाय सोचा-पुनर्विवाह। किन्तु दुर्भाग्यवश पतिरूप में जिस पुरूष का वरण किया, उसने शराब व जुए में लिप्त होकर न केवल संपूर्ण परिवार को दरिद्रता के अथाह सागर में डुबोया, बल्कि बड़ी बच्ची सुनन्दा की तरूणाई को भी दाग दिया।" [६६] सुनन्दा की उम्र जब बारह साल की थी तब से वह "शरीर के सौदे" की धिनौनी नग्न सच्चाई को जानने समझने लगी थी। देह के सौदे की इस शरीर यात्रा में उसके जीवन में अनेक पुरूष आए और गए परंतु "मन का सौदा तो केवल उसने शरदजी के

साथ ही किया। शरद फिल्मी दुनिया से जुड़ा हुआ एक व्यक्ति है, जो प्रतिभा, ईमानदारी एवं मेहनत से काम करता है परंतु इस मोहमयी नगरी में वह सफल नहीं हो पाता। वह फिल्मों में एडिटिंग का काम करता था। शरद बाबू से सुनन्दा की अंतरंगता जब बढ़ती है तब एक दिन वह अपने शरीर के सौदे के प्रथम अनुभव के बारे में बताती है- ''मूझे उसकी हरकते बुरी लगीं। पर सुनता कौन ? वह सारी गरीबी दूर कर सकता था। डैडी को आराम से शराब मिल जाती थी। कितना अच्छा इन्तजाम था....पता है, पता है में कितने बरस की थी....बारह साल सात महीने की.... ।''[६७]

''पचपन खम्भे लाल दीवारे''की सुषमा या ''टेरा कोटा''की मिती जितनी सुशिक्षिता सुनन्दा नहीं थी। अतः कोई ऐसी नौकरी तो उसे नहीं मिल सकती थी। अतः अपनी सुंदरता को भुनाते हुए फिल्मी दुनिया में वह काम पा लेती है, जिसका निर्देश ऊपर किया गया है। फिल्मी दुनिया में सहघ्य मित्र के नाते वह शरद से जुड़ती है, शरद की भी अपनी जरूरते थीं, विवाहित होते हुए भी फिल्मी जगत के आपाधापी से भरे वातावरण में वह स्त्रीसुख से वंचित रहता था। फलतः सुनन्दा के साथ उसके शारीरिक संबंध हो जाते हैं। यह भी एक प्रकार का सौदा ही है परंतु शरद सहघ्यी होने के कारण और लोगों से काफी बेहतर है।

लेखिका निरुपमा सेवती ने प्रस्तुत उपन्यास में इन तथ्यों को भी रेखांकित किया है कि जिस दौर से आज का व्यक्ति गुज़र रहा है, वह पूर्ण रूपेण भ्रष्टाचार से लिप्त है। समाज इस कदर निम्नवर्ग में जा पहूँचा है कि जीवन के एण्टी-मूल्य ही अब जीवन-मूल्य बन गए हैं। महानगरीय जीवन का यह आयाम भी यहाँ स्पष्टतया आंकलित हुआ है कि चापलूस लोगों के सामने प्रतिभाशालियों को घुटने टेकने पड़ते हैं। शरद जैसा आदर्शवादी, सिद्धांतवादी कलाप्रेमी व्यक्ति भी अंततः टूट जाता है। इस प्रकार, महानगरीय परिवेश में व्यक्ति केवल सामाजिक और शारीरिक स्तर पर ही नहीं बँटता है किंतु चेतना के स्तर पर भी बँटता है, खंड-खंड हो जाता है। खंडित व्यक्तित्व महानगरीय जीवन का एक अभिशाप बन गया है।

बेघर (ममता कालिया) : ---

बेघर ममता कालिया का एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें लेखिका ने मध्यवर्गीय शिक्षित मान्यताओं को, उसके अंतर्विरोधों को और उसके रहते निरंतर संघर्ष को रेखांकित किया है। उपन्यास का नायक परमजीत बम्बई की एक कम्पनी में चीफ ऐजन्ट है। परमजीत अर्धशिक्षित और अर्धकचरी मानसिकता वाला औसत बुद्धि का एक सामान्य युवक है। कच्ची-पक्की अंग्रेजी वह बोल लेता है, पढ़ने में वह है, कभी मेज नहीं रहा, परंतु दुकानदार का बेटा होने के कारण उसमें व्यावसायिक बुद्धि है। इसी व्यवसायिक बुद्धि के कारण ही वह चीफ ऐजन्ट की पोस्ट तक पहुँच जाता है। बम्बई की चकाचौंद भरी फास्ट फैशनेबल जिन्दगी में आधुनिकता और फारवर्डनेस का लबादा तो वह ओढ लेता है परंतु उसकी संस्कारगत संकीर्ण मानसिकता और दक्यिानूसीपन को वह तिलांजली नहीं दे पाता।

चीफ ऐजन्ट होने के बाद परमजीत सोचता है कि उसका एक सुंदर-सा सजा-सजाया घर हो, एक सुंदर-सी आधुनिक बीबी हो, एक दो बच्चें हों तो क्या कहने। अपने इन सपनों की पूर्ति के लिए वह संजीवनी नामक एक सुंदर, सुशील शिक्षित युवति से प्रेम करता है और उससे विवाह भी कर लेता है।

परमजीत बाह्यतः आधुनिक दिखता है, किंतु भीतर से वह पुरातनपंथी और दक्यिानूस है। मेरे निर्देशक महोदय ने आधुनिकता और अर्धकचेरपन को अलगाते हुए एक उदाहरण दिया था। उनके यहॉ उनका एक परिचित लेटेस्ट फैशन का वैनिटीबेग रख गया था। बैग के संदर्भ में उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा तो ज्ञात हुआ कि उनका वह संबंधी वह बैग उसके यहाँ इसलिए रख गया था जिस दिन उसे प्रस्थान करना था, वह उसकी यात्रा का आठवाँ दिन था। और आठवें दिन की यात्रा अशुभ मानी जाती है। अब यहाँ वह युवक फैशनेबल था, एल.एल.बी पढ़ रहा था। आधुनिक उपकरणों का प्रयोग करता था , परंतु बावजूद इन सबके दक्यिानूस विचारों का था, इसे कहते हैं मानसिक अधकचरापन। परमजीत भी उसी प्रकार का एक युवक है।

संजीवनी से वह विवाह तो कर लेता है, परंतु विवाह के बाद पुरानी दक्यिानूसी बातें उसके मनोमस्तिष्क का कब्जा ले लेती हैं। सुहागरात के दिन

संजीवनी न तो चीखती चिल्लाती है, न उसे रक्तस्राव होता है । परमजीत ने बजारू पुस्तकों में पढ़ रखा था कि कुंवारी लड़की की योनि में झिल्ली होती है, प्रथम संभोग में वह झिल्ली टूटती है और रक्तस्राव होता है । परंतु संजीवनी के साथ ऐसा कुछ नहीं होता । अतः सुहागरात वाले दिन ही उसके मन में एक ग्रंथि बँध जाती है कि संजीवनी बदचलन और चारित्र्यहीन है,वह संजीवनी के जीवन में आनेवाला प्रथम पुरूष नहीं है, इस भ्रांत धारणा के कारण परमजीत संजीवनी से विवाह-विच्छेद कर लेता है और रमा नामक एक दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है । वस्तुतः कौमार्य-अवस्था में लड़की में अक्षतयोना होने का जो विचार है वह गलत, भ्रान्त मध्यकालीन और अवैज्ञानिक है । यह तभी संभव था, जब बाल-विवाह होते थे । अब लड़कियाँ जब पढ़ती है, सायकल या व्हीकल चलाती हैं, दौड़ती है या जौगींग करती हैं तो कुमारीपटल या झिल्ली का साबूत रहना कईबार असंभव हो जाता है, परंतु परमजीत के मन में तो इस बात को लेकर यह गाँठ पड़ जाती है । इस प्रकार एक गलत धारणा या मान्यता के कारण संजीवनी घर से बेघर हो जाती है ।

परमजीत रमा से विवाह तो कर लेता है । परंतु वह अत्यंत कंजूस और फूहडटाईप की लड़की है, वह इतनी संकीर्ण, स्वार्थी,कंजूस और दक्यिानूस है कि पैसे बनाने के चक्कर में वह परमजीत की अभिरूचि और स्वास्थय का ध्यान भी नहीं रखती । अतः इन्हीं परिस्थितियों में घुटकर परमजीत की मृत्यु हो जाती है । इस तरह रमा अपने घर-परिवार के गणित को ठीक करने के चक्कर में स्वयं अपने आपको ''बेघर''कर लेती है ।

वस्तुतः मकान और घर में अंतर होता है । प्रत्येक मकान घर नहीं होता । घर का मतबल है पारस्परिक प्रेम,संतोष, सुख-शांति और विश्वास । संजीवनी के चरित्र पर शंका करके परमजीत उस घर को तो बरबाद कर चुका था । अतः यह केवल रमा के ''बेघर'' होने की कहानी नहीं है, संजीवनी और परमजीत के भी बेघर होने की कहानी है । प्रेम केवल भावात्मक आवेगों का नाम नहीं है । प्रेम समझदारी और विश्वास के दो पहियों पर चलता है । ये दो पहिये ही प्रेम की धुरी को आधार देते हैं । परमजीत जीवन की इस धुरी को ही गड़बड़ा देता है । और जीवन में यह धुरी जब एकबार गड़बड़ा जाती है, तो

फिर उसे संभालना अत्यंत दुष्कर हो जाता है। [६८]

यहाँ परमजीत और संजीवनी तथा रमा के पारिवारिक जीवन के साथ-साथ महानगरीय जीवन के आपाधापी, उसकी कमरतोड़ महँगाई और उसके कारण टूटते-बिखरते घर-परिवार इत्यादि को भी लेखिका ने रेखांकित किया है। परमजीत और संजीवनी की छोटी दुनिया के साथ-साथ महानगरीय जीवन-संघर्ष की एक बृहत्तर दुनिया भी यहाँ उपस्थित है।

०

अनारो: ---

"अनारो" मंजुल भगत की एक महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है। महत्वपूर्ण इस अर्थ में कि हिन्दी लेखिकाओं पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि उनके लेखन में उच्चवर्ग तथा मध्यवर्ग का आलेखन मिलता है। उसमें निम्न या निम्नतम वर्ग का चित्रण नहीं मिलता। प्रस्तुत उपन्यास एक जवाब है। इसमें हमारी राजधानी दिल्ली की झुग्गी-झोंपड़ियों के परिवेश को लिया गया है, महानगरों के झोंपड़पट्टी का जीवन निम्नतम कक्षा का होता है। उसे महानगरीय जीवन का कोढ़ भी हम कह सकते हैं। मराठी के जैन दढ़वी द्वारा प्रणीत "चक्र" जगदम्बाप्रसाद दीक्षित "मुरदा घर" जैसे उपन्यासों में हम महानगरीय जीवन के इस नरक को देख सकते हैं। भीष्मसाहनी के "बसंती" उपन्यास में महानगरीय जीवन के इस परिवेश को देखा जा सकता है। दिल्ली के आसपास तथा जमुना के पट पर मीलों फैली झुग्गी-झोंपड़ियों की एक अनोखी दुनियाँ यहाँ आबाद (या बरबाद) है। जिंदगी की वास्तविकता से अनजान काल्पनिक यूटोपिया में जीने वाले लोग कईबार महानगरों से इन झुग्गी-झोंपड़ियों के हटाने की बात करते हैं, परंतु इन्हें मालूम होना चाहिए कि जहाँ गगनचुम्बी इमारतें और स्काय स्कैपर महानगरीय जीवन की एक पहचान है। वहाँ इन झुग्गी-झोंपड़ियों का भी एक अस्तित्व है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। महानगरों के इन बड़े-बड़े प्रासादों में रहनेवाले सुविधाभोगी लोगों के यहाँ काम कौन करता है? पृथककाया-धारी सेठानियाँ तो कुछ करेंगी नहीं। दूसरे महानगरों में जो नित्यनवीन कालोनियाँ, चेम्बर्स, शोपिंग सेन्टर

इत्यादि बनते रहते हैं, उनके लिए मज़दूर कहाँ से आयेंगे ?

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका अनारो ऐसी ही एक झोंपड़ी में रहती है। वह एक दीन-हीन सर्वहारा श्रमिक वर्ग की स्त्री है। वह जीवटवाली जुझारू औरत है। दुःख किसे कहते हैं उसे इन झोंपड़पट्टी के रहनेवाले लोगों से कोई जान सकता है। सुविधाभोगी संपन्न लोगो के दुःख भी ओढ़े हुए और आरोपित होते हैं। अनारो की विशेषता यह है कि वह किसी भी संकट या दुःख के सामने घुटने नहीं टेकती है। डटकर उसका मुकाबला करती है। पतझड़ की आवाज़े की सुनीला आत्महत्या कर देती है। जीवन की वास्तविकताओं का वह सामना नहीं कर पाती जबकि प्रस्तुत उपन्यास की अनारो जीवन की प्रत्येक लड़ाई अकेले लड़ती है और कठिनाईयों के सामाने कभी हार नहीं मानती। अपने जूझारू, परिश्रमी स्वभाव के कारण संकट के हर कोण से वह कोई न कोई रास्ता निकाल लेती है। दिल्ली की बड़ी-बड़ी कोठियों में वह काम करती है और अपने समूचे परिवार का पालन पोषण करती है। यहाँ तक कि वह अपने पति को भी पालती है। उच्चवर्गीय जीवन का विलोम यहाँ दृष्टिगत होता है। ऐसा नहीं है कि अनारो का पति कोई अपाहिज या अपंग व्यक्ति है। वह एक निठल्ला, शराबी-कबाबी और जुआरी व्यक्ति है और बीबी की कमाई पर मौज करता है। महानगरीय जीवन के स्तंभों की जिंदगी का यह भी एक पक्ष होता है कि वहाँ स्त्रियों को पुरूष नाम के किसी प्राणी का छत्र चाहिए। अनारो का पति नंदलाल भी ऐसा ही एक छत्र है। कर्णटों तथा वाघरी जैसी जातियों में भी यह पाया जाता है कि स्त्रियाँ दिनभर महेनत मज़दूरी के कामों में खपती रहती है। और उनके पुरूष उनकी कमाई पर ऐश करते हैं और उतना ही नहीं उनकी दौंस भी सहती है, मार भी खाती है। उनके सामने सिर्फ एक ही संतोष होता है कुछ भी हो अपना 'मर्द' तो है। नंदलाल को किसी भी बात की चिंता नहीं है। उसे खाना चाहिए, जुए के लिए पैसे चाहिए, शराब चाहिए। अनारो उसकी इन तमाम जरूरतों को पूरा करती है। अनारो को देखकर "मुर्दाघर" की मैना स्मृतिपटल पर पहुँच जाती है। उसका पति पोपट, पति नहीं, पति का तर्क मात्र है। वह मैना से "धंधा" भी करवाता है। इस बिंदु पर अनारो अलग पड़ती है। वह अपनी इज्जत, आबरू और 'मरजादा'

को सबसे ज्यादा महत्व देती है। नंदलाल की जरूरते पूरी करने में भी वह एक प्रकार की शान का अनुभव करती हैं। वह नंदलाल पर अपना अधिकार भी चाहती है और वह उसकी झूठी दौंस के सामने झुकती नहीं। यहाँ वह दूसरी झोंपड़पट्टी की स्त्रियों से थोड़ी अलग पड़ती है।

अनारो का पति नंदलाल बीच में कभी-कभी कुछ दिनों के लिए भाग जाता है, पर अनारो उसका विरोध नहीं करती। अनारो को यह बरदाश्त नहीं कि नंदलाल उसकी छाती पर मुंग दलने के लिए कोई दूसरी औरत ले आवें। एक बार नंदलाल ऐसा सोचता भी है; किंतु तब अनारो उसका डटकर मुकाबला भी करती है। फलतः नंदलाल उस औरत को अलग से रखता है। बाद में वह औरत भी नंदलाल के लिए कमाई का एक जरिया हो जाती है। अनारो की चरित्रगत ऊँचाई और गरिमा तो तब ज्ञात होती है, जब उसे पत्ता चलता है कि उस औरत को नंदलाल से एक लड़का हुआ है और वह औरत उस लड़के के साथ किसी गैर मर्द के साथ रह रही है, तब उसका आत्माभिमान यह स्वीकार नहीं करता कि उसके पति का बच्चा किसी दूसरे के घर में अनाथों की तरह पले। अतः वह उसे ले आती है।

अनारो की प्रवृति गोदान के होरी जैसी है। गोदान में होरी ''मरजादा''पर मर मिटता है, यहाँ अनारो मर्जादा की रक्षा के लिए अपनी हैसियत से ज़्यादा खर्चा करती है। लड़की की सगाई खूब धूम-धाम से करती है। उसमें इतना कर्जा ले लेती है कि चुकाते-चुकाते एकदम टूट जाती है। अनारो का दामाद समझदार था। वह मंदिर में जाकर सादी विधि से विवाह संपन्न करता है। किंतु अनारो इस बात से प्रसन्न नहीं होती। वह अपने मोहल्ले वालों तथा रिश्तेदारो को इस उपलक्ष में दावत देती है। इस प्रकार उस पर और भी कर्ज़ा चढ़ जाता है। ऋण के इस बोझ तले वह ज़िदगी-भर पिसती है। एक स्थान पर वह कहती है- ''कर्जा तो यो चुटकियों में उतर जायेगा, पर उसका मान, उसकी कदर बनी रहे, उसके मरद की नज़र में।''[६९]

इस बिंदु पर अनारो शैलेष मटियानी कृत ''महाभोज'' कहानी की शिवरति से तुलनीय है उसके पति चेतीराम के पिता की मृत्यु पर जब चेतीराम खालिस गूढ़ की डली बटवाकर नेक पूरा करने की बात करता है तब शिवरति

कहती है- "मोती के बापू, बाप के मरने का रोना सभी मर्दों को शोभा देता होगा, तुम्हारा ये जोरू के आगे का रोना मुझसे बर्दाशस्त न होगा। अरे बेवकूफ, मैं क्या किसी राह चलते की " ....और पचास तोले चाँदी की करधनी बेचकर शिवरति अपने ससुर का कारज निवारती है। शिवरति भी अनारो की भाँति "मरजादा"पर मर मिटने वाली औरतों हैं।

इस प्रकार "अनारो" के माध्यम से लेखिका ने महानगरीय जीवन के निम्नस्तर के लोगों में व्याप्त विषमताओं, परंपरागत रूढ़ियों, समाज की मिथ्या मान्यताओं आदि को रेखांकित किया है। अनारो एक दुःखी और असहाय नारी है। पति को अत्याचार, दुर्भाग्य और गन्दे वातावरण से निरंतर संघर्ष करते हुए वह मरती-खपती रहती है पर उसका स्वाभिमान कभी मरता नहीं। परिस्थितियों की विषमताओं ओर बिवशता के बीच भी उसकी चरित्र को कोई आँच नहीं आती।

लेखिका ने एक तरफ महानगरीय जीवन की झुग्गी-झोंपड़ियों में रहनेवाली अनारो के चरित्र को उद्घाटित किया है तो दूसरी तरफ उसकी विसद्धष्टता (constrast) में महानगरीय परिवेश के उच्चवर्गीय लोगों को रखा है, जिनके यहाँ अनारो काम करने जाती है। लेखिका ने अनारो के माध्यम से अच्चवर्गीय के लोगों के जीवन की कुछ झलकियों को इस तरह प्रस्तुत किया है कि उनके जीवन का खोखलापन स्वतः ही खुलकर सामने आ जाता है।

o o

आपका बंटी : ----

अपका बण्टी मन्नू भण्डारी का उपन्यास है। जिसमें महानगरों में रहनेवाली शिक्षित पति-पत्नी के अहम की टकराहट को चित्रित किया गया है। मोहन राकेश के उपन्यास "अँधेरे बंद कमरे" में जिन स्थितियों का निरूपण हुआ है, लगभग वे ही स्थितियाँ, यहाँ पर मौजूद है। "अँधेरे बंद कमरे" पुरूष की दृष्टिकोण से लिखा गया है उपन्यास है; जबकि आपका बण्टी स्त्री के दृष्टिकोण से लिखा गया उपन्यास है। लेखिका की स्थिति निरपेक्ष दृष्टि की दाद देनी होगी कि उसने कहीं भी गलत ढंग से पुरूष को दोषित ठहराने

का प्रयास नहीं किया। महानगरों में दाम्पत्य जीवन में जी बदलाव आ रहे हैं, जो संघर्ष और टकराहट दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उनमें हमेशा पुरूष ही दोषित नहीं होता, अपितु नवीन परिस्थितियों में नारी की बढ़ी हुई अहमनीयता भी उसमें उत्तरदायी है।

उपन्यास में अजय और शकुन के दाम्पत्य में दरारें किस प्रकार पड़ती है उसका अधिक विश्लेषण नहीं मिलता है, परंतु संबंध-विच्छेद के बाद की स्थितियों का विश्लेषण है, जिनके द्वारा हम शकुन की प्रकृति को समझ सकते हैं।

शकुन अजय की हरबात पर प्रतिक्रिया ही होती है। वह एक कॉलेज में प्राचार्य है। उनका वह status भी उनके दाम्पत्य-जीवन के आड़े आता है। इस प्रकार अजय और शकुन तो लड़झगड़कर अलग हो जाते हैं। किंतु उसका मूल्य चुकाता पड़ता है छोटे, निर्दोष, निरीह, छोटे बण्टी को। जिन परिवारों में "माँ-बाप" में मनमेल नहीं होता, जहाँ वे निरंतर, परस्पर आरोप-प्रत्यारोप में लगे रहते हैं, उन बच्चों को कितने संत्रास से गुजरना पड़ता है, उसका बोध प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। खंडित दाम्पत्य के कारण बच्चों की जो दयनीय और परवश स्थिति होती है उसको रेखांकित करना लेखिका का लक्ष्य रहा है। स्वयं लेखिका ने इस संदर्भ में कहा है- "मैं दिखाना चाहती थी कि खंडित माता-पिता के बच्चें किन परस्थितियों से गुजरते हैं। सबका अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। इस सारी परिस्थिति में बच्चों पर क्या प्रतिक्रिया होती है, यही दिखाना चाहती थी। मैंने ऐसे बच्चों को देखा है, तब बैचैन महसूस किया है। मैं उसी को पाठक तक पहुँचाना चाहती थी।"[७०]

उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में अजय और शकुन को अलग-अलग रहते बताया है। उन दोनों के सहजीवन से उत्पन्न बण्टी फिलहाल शकुन के साथ रहता है। शकुन और अजय के बीच में वकील चाचा एक पुल के रूप में आते हैं। वे इन दोनों को मिलाने की भरपूर कोशिश करते हैं, किंतु सफल नहीं हो पाते। अजय ने स्वामित्व की भावना है जिसे शकुन का दर्प सहन नहीं कर पाता। वकील चाचा के द्वारा ही शकुन को अजय की गतिविधियों का पता चलता रहता है। अजय कभी-कभी आता है और बण्टी को अपने साथ घुमाने

ले जाता है, उसे ढेर सारे चोंक्लेट और खिलौने वगैरह दिलाता है। शकुन तो इस इस पक्ष में नहीं थी कि बण्टी कभी भी अजय के साथ जाय, परंतु वकील चाचा समझते हैं कि बण्टी प्रायः स्त्रियों के बीच घिरा रहता है। अतः उसे एक "growing" बच्चे जैसा माहोल मिलना चाहिए। वैसा नहीं मिल रहा। वकील चाचा कई बार समझाते हैं कि "ही शुड ग्रो लाइक ए बोय।" अतः वकील चाचा के समझाने पर ही शकुन अजय के साथ बण्टी को भेजने के किए तैयार हो जाती है। किंतु बण्टी का शिशु मन यह नहीं समझ पाता कि उसके मम्मी-पापा साथ-साथ क्यों नहीं रहते। उसके दूसरे संगी-साथियों के मम्मी-पापा को साथ-साथ रहते हैं, फिर उसके पापा कभी-कभी आकर क्यों वापिस चले जाते हैं। उसकी मम्मी उसके पापा के साथ बोलती क्यों नहीं है। उसके अनेक प्रश्न उसके दिमाग में कुलबलाते हैं, जिसका योग्य प्रतिभाव न मिलते पर वह भीतर ही भीतर कुण्ठित होने लगता है।

महानगरीय-परिवेश में शिक्षित स्त्री-पुरूष की मुख्य समस्या है उनका अहम- ego- का विस्तरण। व्यक्तिवादी भौतिकवादी चिंतन ने स्त्री-पुरूष दोनों के अहम को इतना उग्र प्रखर बना दिया है कि इस अहम के रहते व्यक्ति धीरे-धीरे अमानवीय होता जा रहा है। निर्मल वर्मा कृत "वे दिन" उपन्यास में ज्राक और रायना के बीच उनका बच्चा मीता अनाहत (unwanted) अतिथि-सा है जिसे दोनों बारी-बारी से झेलते हैं। "रेत की मछली" की कुंतल भी अपनी बेटी तोरण को उसके पति के हवाले कर देती है। स्त्री का इतना कठोर हो जाना, अपने बच्चे के लिए भी, क्या मनुष्यत्व की अंतः सलिला का सूखते जाना नहीं है ? [७१] स्त्री-पुरूष के इस अहम में बेचारा बच्चा पिस जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में शकुन पहले तो बण्टी का बहुत ध्यान रखती है, किंतु बाद में अजय जब मीरा नामक युवति से विवाह कर लेते हैं। तब उसकी प्रतिक्रिया में शकुन भी Dr. जोशी से विवाह कर लेती है, तब उसकी प्रतिक्रिया में शकुन भी डॉ. जोशी से विवाह कर लेती है। अपने अहम की पुष्टि में वह यह भी नहीं सोचती है कि डॉ. जोशी के यहाँ दो बच्चों के साथ बण्टी की क्या स्थिति होगी, "आपका बण्टी" के संबंध में डॉ. महीपसिंह ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया था कि जो शकुन पहले किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करती, बाद

में Dr. जोशी के हस्तक्षेप को कैसे बरदाश्त कर लेती है ? [७२] शकुन का चरित्र ही उसका उत्तर है। उसके सारे कार्य-कलाप सहज रूप से सम्पादित न होकर, अजय की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही होते हैं। अजय को "दिखा देने की वृति" के लिए वह कुछ भी बरदाश्त कर सकती है। शकुन के मन की कसक ही यही है। "सच पूछा जाय तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं है यह, वरन् अजय को हरा न पाने की चुभन है यह, जो उसे उठते-बैठते सालती रहती है।" [७३] डॉ. जोशी के साथ का विवाह भी शकुन की उसी वृति का परिचायक है। यह क्रिया नहीं, प्रतिक्रिया है। स्वस्थ संतुलित मस्तिष्क से लिया गया निर्णय नहीं है, कुण्ठित प्रतिक्रियायित मन से लिया गया निर्णय है। ऐसे विवाह भी अंततः सफल तो नहीं होते, किंतु वह एक और उपन्यास का विषय हो सकता है। यहाँ लेखिका ने महानगरीय जीवन के संदर्भ में यह निदृष्ट करने का यत्न किया है कि पश्चिम में स्त्री स्वतंत्रता का जो संमोहन रचा गया है, वह भी अंततोगत्वा कठपुतली का खेल सिद्ध हो रहा है जिसमें डोरी तो फिर भी पुरूष के हाथ है और स्त्री उसकी वासना के इशारों पर नाच रही है। इस संदर्भ में डॉ. पारूकांत देसाई के निम्नलिखित विचार दृष्टव्य हैं - "यह बढ़ते जाते ब्युटी सैलून, स्लीमिंग सैन्टर और मसाज सैन्टर किस बात का संकेत देते हैं ? स्त्री का जितना नैतिक शोषण पश्चिम में हो रहा है, कदाचित उतना हमारे यहाँ नहीं होता होगा। स्त्री वहाँ पति, भाई, पिता आदि की गुलामी (?) नहीं करती पर ओफिस के बॉस की गुलामी तो फिर भी करनी ही पड़ती है।" [७४]

महानगरीय परिवेश में बच्चों की स्थिति बड़ी दयनीय है। उच्चवर्गीय समाज में माँ-बाप बच्चों के लिए धन तो व्यय कर सकते हैं, किंतु उनके पास समय नहीं है। संपन्नता के बीच भी वे नौकरों और आयाओं के सहारे पलते-बढ़ते हैं। माँ-बाप का यथेष्ठ प्यार उन्हें नसीब नहीं होता। निम्नवर्गीय स्थानो में रहनेवाले बच्चे तो गंदे नाले के कीड़ों की तरह कुलबुलाने के लिए विवश है। "मुर्दाघर" में ऐसे बच्चों को लेखक ने मानवीय संवेदना के साथ उकेरा है। मध्यवर्ग या उच्च मध्यवर्ग जहाँ माँ-बाप दोनों नौकरी सुदा होते हैं, वहाँ उनके अहम के जीवन को तहस-नहस कर देते हें। शैशव में बच्चे को सबसे ज़्यादा प्यार-मोहब्बत की जरूरत होती है। यदि यह शैशव ही प्यासा-तरसता

रह जाए तो जीवन के उजाड़ होने में कोई आशंका नहीं रहती। महानगरीय जीवन से मानवीय-मूल्यों के झुकते जाने का यह भी एक कारण है।

००

दिनांत : ---

दिनांत शीला रोहेकर का महानगरीय जीवन की समस्याओं को रेखांकित करनेवाला उपन्यास है। उसकी नायिका आशा एक शिक्षित एवं अविवाहित नारी है। प्रस्तुत उपन्यास में हम महानगरीय जीवन का ऊबाऊ और मोनोटोनस वातावरण देख सकते हैं। इसके कारण जीवन की व्यर्थता ऊबरकर आती है। उपन्यास में महानगर मुम्बई के जीवन की आपा-धापी को रेखांकित किया गया है।

उपन्यास की नायिका आशा का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत जटिल प्रकार का है। शैशव अवस्था में उसके मन में पिता के प्रति एक प्रकार के भय की भावना दृष्टिगत होती है, परंतु जब वह बड़ी हो जाती है, पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर हो जाती है, तब भय की यह भावना उपेक्षा और झुंझलाहट में बदल जाती है। आशा निम्न मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है। उसके माता-पिता विवाह-हेतु दहेज नहीं जुटा पाते हैं। वे उसकी शादी करने में अक्षम हैं। अतः माता-पिता के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा का भाव, उसमें पैदा होने लगता है। ''रूकोगी नहीं राधिका''की राधिका की भाँति उपन्यास की आशा भी ''इलेक्ट्राकाम्पलेक्स'' से पीड़ित है। राधिका की तरह उसे भी उन तमाम कामों में आनंद आता है। जिनसे उसके माता-पिता को ठेंस पहुँच सकती है। अपने पिता भी उपेक्षा करने में उसे एक प्रकार की आत्म-संतुष्टि मिलती है। वह लड़कों के साथ घूमती रहती है। एक बार उसके पिता उसको थोडा डाँट देते हैं कि- ''यह मित्र.... फला दोस्त, क्या तमाशे हैं सब। यह घर में रहता है तो चौखट के भीतर रहने की कोशिश करो। तुम स्त्री हो समझी।'' [७५]

परंतु पिता की इस डाँट के बाद वह और भी दीठ हो जाती है। उसका व्यवहार और भी रूखा हो जाता है। उसके बाद वह और भी देर से लौटने

लगती है। उसके माता-पिता विवश होकर उसके इस व्यवहार को बर्दाशत कर लेते हैं। आशा मुम्बई के एक होस्पिटल में नौकरी करती है। वह आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र है, बल्कि उसके माँ-बाप और भाई उस पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में वे मसोसकर रह जाते हैं। वस्तुतः उसका विवाह न कर पाने के कारण उनमें एक प्रकार का अपराधबोध भी है। माँ-बाप तथा परिवारवालों की इस विवश मनोदशा का विश्लेषण स्वयं आशा एक स्थान पर करती है- ''उनके चेहरों से मुझे लगा था कि वे टूट कर बदलाव नहीं था। वह था केवल समझौता। मेरी बढ़ती उम्र के साथ उनके मातृत्व...पितृत्व का समझौता ...मेरी दृढ़ता के साथ उनके पारम्परिक संस्करों का समझौता, मेरे लड़कीपन के साथ उनके सामाजिक बन्धनों का समझौता।''[७६]

आशा की इस गुमराहगी के पीछे उसके घर का माहोल, स्थितियाँ जिम्मेदार हैं। उसके घर का वातावरण हमेशा तनाव-ग्रस्त रहा। प्रेम, शांति, सौहार्दपूर्ण, सुकून का वहाँ नामोनिशान नहीं था। ऐसे में रहते-रहते आशा सताईस की हो जाती है, उसकी सभी सहलियो की शादी हो गयी है। वह अकेली अविवाहित रह गयी है। अतः उसका मन विद्रोह करता है- घर-परिवार से, माता-पिता से, समाज से, परंपराओं से, रूढ़ियों से, पुरानी मान्यताओं से। आशा में अनेक प्रकार की कुण्ठाएँ हैं, दूसरे आर्थिक दृष्टि से वह स्वतंत्र है। ऐसी कुण्ठाग्रस्त स्वतंत्रता सदैव आवारगी की ओर ले जाती है और आशा के साथ यही होता है। उसके जीवन में चार लड़के आते हैं, किंतु विवाह किसी के साथ नहीं होता है। युवानी का दौर तो आवारगी में कट जाता है परंतु ढलती उमर में एक रस ऊबाऊ, नौकरीशुदा जीवन उसे काटने दौड़ता है। वह सोचती है कि उसकी दिन-चर्या को मानो एकरसता की धुन लग गई है। इस बिंदु पर आशा की कहानी अज्ञेय की ''ग्रैगिन'' कहानी से तुलनीय-सी प्रतीत होती है। जीवन में कोई आशा, कोई उमंग, कोई उल्लास, कोई रूचि नहीं रह जाती है। अपनी तनहाइयों से लड़ते हुए यादों के भँवर में डूबते-उतराते उसके दिन का अंत हो जाता है। यह ''दिनांत'' किसी एक दिन का नहीं है, उसके जिन्दगी का प्रत्येक दिन का दिनांत है।

प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय जीवन के कतिपय आयाम स्पष्ट हुए हैं।

जैसे महानगरीय जीवन की आपा-धापी, सामाजिक पारिवारिक संबंधों का कमज़ोर पड़ते जाना बेरोजगारी, शिक्षित लड़कियों के माँ-बाप की लाचारी, उतरदायित्व नहीं, विवाह न कर पाने के कारण उनका अपराधबोध से ग्रसित रहना, लड़कियों का स्वच्छंद और उन्मुक्त यौन-व्यवहार इत्यादि-इत्यादि।

००

उसके हिस्से की धूप : ---

मृदुला गर्ग के उपन्यास दीप्ति खंडेलवाल के उपन्यासों के अलग प्रकार के हैं। जहाँ दीप्तिजी के उपन्यासों में यौन-उन्मुक्तता पुरूष-पात्रों में दृष्टिगोचर होती है, वहाँ मृदुलाजी के उपन्यासों में वह यौन स्वच्छंदता और स्वेच्छाचार नारी-पात्रों में दिखाई पड़ता है। दीप्ति जी की नारियों में हताशा, निराशा आदि प्राप्त होते हुए भी संघर्ष करने का एक माद्दा उनमें मिलता है, दूसरी ओर मृदुलाजी के पात्र एक विशेष तबके में मानसिक उहापोह को जगाते है। मृदुला जी का उपन्यास ''उसके हिस्से की धूप'' मुख्यतः तीन पात्रों को केन्द्र में रखकर चला है। यह तीन पात्र हैं- जितेन, मनीषा और मधुकर। मनीषा की शादी जितेन से होती है, जो एक उद्योगपति है। जितेन एक आधुनिक विचारोवाला उदात्त व्यक्ति है, किंतु दिनरात वह अपने व्यवसाय में व्यस्त रहता है। मनीषा कोलेज में पढ़ती है, घर का काम भी करती है और लिखती भी है। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि बावजूद इसके उसके पास खूब सारा समय रहता है। जिस तरह से मृदुलाजी ने बताया है कि मनीषा दोहरे उत्तरदायित्व को निभाती है- घर और कोलेज के। ऐसी स्थिति में उसके पास समय का अभाव रहना चाहिए। ममता-कालिया के उपन्यास नरक-दर नरक के सीता गुप्ता की समस्या यह है कि अध्यापिका होने के नाते दोहरे उत्तरदायित्वों को निभाने के कारण अपने पति को समय दे नहीं पाती। यहाँ मनीषा के पास समय ही समय है और जितेन है कि वह अपने व्यवसाय में रात-दिन डूबा रहता है। मनीषा है कि रात-दिन जितेन की प्रतीक्षा करती रहती है। जितेन एक परिपक्व और खुले दिमागवाला व्यवसायिक व्यक्ति है और वह रिश्तों को अपने या दूसरों के ऊपर हावी नहीं होने देता। मनीषा के इलावा अन्यत्र उसका कोई

MEHTA LIBRARY

चक्र भी नहीं है। वह मनीषा को बेतहाशा चाहता है। दूसरे अपने दाम्पत्य को लेकर वह बहुत आश्वस्त है। मनीषा उसकी पत्नी है, जब चाहे तब वह उसे प्रेम कर सकता है और वह करता भी है।

किंतु मनीषा अंतर्मुखी नायिका है, वह रोमेण्टिक ख्यालों में खोयी रहती है। वह सोचती है कि जैसे फिल्मी हीरो हीरोईनों के पीछे पागल रहते हैं, वैसे जितेन भी उसके पीछे पागल बनता फिरे। मनीषा वास्तविकता और रोमेण्टिसीज़म में अंतर नहीं कर पाती। मनीषा में प्रेम की उत्कट भावना दृष्टिगोचर होती है। वह सोचती है कि जितेन उसकी प्रशंसा करे, उसके नाज़ नखरे उठावे, उसका मन जीतने की कोशिश करे, किंतु दूसरी तरफ जितेन कभी इन सब चीज़ों की आवश्यकता ही नहीं समझता था। वर्तमान जीवन की यांत्रिकता तथा आपाधापी ने मनुष्य के ज़ड बना दिया है। महानगरों में उच्चवर्गीय वर्गों में इस निरसता को रेखांकित किया जा सकता है। महानगरीय परिवेश में व्याप्त यह निरसता दाम्पत्य जीवन को खोखला कर रही है। प्रख्यात समाजशास्त्री तथा नारी-वादी चिंतक श्रीमती लीलाबेन पटेल ने आधुनिक जीवन प्रभावों के समझाते कभी कहा था - "पुरूष में खराब आदतों का अभाव तथा सज्जनता हो उतना ही एक पत्नी के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके उपरांत वह थोड़ा रोमेण्टिक तथा अत्यन्त प्रेमालु होना भी जरूरी है।"[७७] प्रस्तुत उपन्यास का जितेन धीर, गंभीर, समझदार तथा सज्जन तो है, उदार और खुलेदिमाग का भी है; प्रेमालू भी है; किंतु लीलाबेन जिसे रोमेण्टिक तथा अत्यंत प्रेमालू कहती है उस प्रकार का नहीं है। मनीषा की प्रेमभावनाएँ और कामभावनाएँ और अपने पति से अपेक्षाएँ भी कुछ बड़ी-चढ़ी हैं फलता वह एक प्रकार की द्वन्द्वात्मक परिस्थिति से गुज़र रही थी और ऐसे में मधुकर नागपाल नाम के व्यक्ति से उसका परिचय होता है। मधुकर उसे एक सेमिनार में मिलता है। वह भी मनीषा की भाँति कोलेज में प्रध्यापक है। मनीषा प्रेम भावना को लेकर काफी रोमानी ख्यालों को रखती है। मनीषा जितेन से विवाह तो करती है, किंतु वह विवाह उस प्रकार के प्रेम में नहीं परिणत होता, जिसकी उसने कल्पना कर रखी थी, मनीषा चाहती है कि जितेन उसके प्रेम में इस प्रकार डूबे कि उसे किसी प्रकार का होश न रहे परंतु जितेन तो एक व्यवसायिक व्यक्ति है। वह

इस प्रकार के चोंचलों में नहीं मानता। मनीषा को लेकर उसके मन में कभी शंका-कुशंका भी पैदा नहीं होती। वह मनीषा को लकर अधिक Possessive भी नहीं है। मनीषा का प्रेम उसे सहज रूप से प्राप्त है। अतः उससे अलग होने की कल्पना भी उसके मन में नहीं आती। वह इस संदर्भ में काफी निश्चिंत है। एक बार वह कभी मधुकर का भी उल्लेख करती हैं, लेकिन जितेन उस वक्त भी अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता। जितेन का प्रेम धीर-गंभीर और गहरा है। इस प्रेम के कारण वह मनीषा की इज्जत करता है। दूसरी ओर मनीषा जितेन के व्यवहार में एक प्रकार का ठंढ़ापन देखती है। मनीषा यदि मधुकर से न मिलती तो उसे ऐसा एहसास न होता। मधुकर के स्वभाव की विसदृशता मनीषा को आकर्षित करती है। जहाँ जितेन मनीषा को लेकर Possessive नहीं है वहाँ मधुकर कुछ ही दिनों के प्रेम में इतना Possessive हो उठता है कि मनीषा का उसके पति कि साथ रहना भी अच्छा नहीं लगता और वह बार-बार मनीषा को जितेन से तलाक लेने के लिए उत्साहित करता है। अंततोगत्वा वह जितेन के सामने तलाक का प्रस्ताव रखती है। वह मनीषा को इस तरह से समझाता है। लेकिन मनीषा पर तो प्रेम का भूत सवार होता है और वह जितेन की कोई बात नहीं मानती। जितेन मनीषा को समझाता है कि कुछ ही दिनो के प्रेम में तुम इतना उस पर विश्वास कैसे कर सकती हो। तब मनीषा ठक-सा उत्तर देते हुए कहती है- "हाँ, पर हर आदमी को दिन और महीने के हिसाब से नहीं जाना जाता। उसे मैं दो सप्ताह में ही इतना जान गई थी जितना तुम्हें दो वर्ष में भी नहीं जान पायी।"[७८] मनीषा की बात से जितेन को दुःख तो होता है, पर मनीषा के दुराग्रह के कारण वह उसे तलाक दे देता है। तलाक देते हुए भी वह उसे कहता है कि मनीषा कभी भी भविष्य में लौटना चाहे तो लौट सकती है और इसलिए जितेन दूसरा विवाह भी नहीं करता।

दूसरी तरफ मनीषा मधुकर से विवाह करती है, किंतु कुछ ही दिनो में दूर के ढोल सुहावने वाली कहावत जैसा होता है। जितेन जहाँ अपने व्यवसाय में डूबा रहता था, वहाँ मधुकर अपनी Academic योग्यता को बढ़ाने में लगा रहता है। इसे मानव-मन की विचित्रता ही समझना चाहिए कि प्राप्त के प्रति एक प्रकार का विकर्षण और अप्राप्त के प्रति आकर्षण। मनीषा जब तक दूसरे की

पत्नी थी, अप्राप्त की कोटि में थी, तब तक मधुकर उस पर दीवाना था। किंतु पत्नी होने पर प्राप्त की कोटि में आने पर फिर उतना आकर्षण नहीं रहता। विवाह के चार साल मनीषा नैनीताल में जितेन को मिलती है, और उसके साथ शारीरिक संबंध भी बांधती है। अब जितेन उसे भाने लगता है। अब मनीषा को लगता है कि वह अब मधुकर को नहीं छोड़ सकती। पति के रूप में मधुकर ही ठीक है। जितेन कभी-कभार ठीक है। अतः दिल्ली आने पर भी कभी-कभी जितेन को मिलती है। इस प्रकार जितेन को उसके हिस्से की धूप मिलती रहती है। जितेन और मनीषा के संबंध कभी मधुकर पर प्रकट हो भी सकते हैं और मधुकर Possessive Nature को देखते हुए उसका कोई भयंकर परिणाम भी आ सकता है।

महानगरीय जीवन में विशेषतः उच्चवर्ग और उच्चमध्यवर्ग में यौन स्वच्छंदता और उन्मुक्तता बहुत बढ़ रही है। उसके कारण परिवार छिन्न-भिन्न हो रहे है। महानगरीय जीवन में पति-पत्नी के बीच एक तीसरे व्यक्ति का प्रवेश कई कारणों से होता रहता है। यहाँ मनीषा के जीवन में मधुकर का प्रवेश उनके समव्यवसायिक होने के कारण होता है। स्त्री घर की चार दीवारी से बाहर आयी है पर यदि समझदारी न हो, गंभीरता न हो, विवेक न हो, सही गलत की तमीज़ न हो तो दाम्पत्य जीवन के टूटने बिखरने के कई आसार दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हो सकता है कि कालांतर में विवाह जैसी संस्था ही नेस्त व नाबूद हो जाय। यहाँ गनीमत है कि कोई बच्चा नहीं था यदि बच्चा होता तों ''आपका बण्टी'' जैसी स्थिति यहाँ आ सकती थी।

००

चित कोबरा : ---

मृदुला गर्ग का दूसरा उपन्यास ''चितकोबरा'' भी महानगरीय जीवन के उच्चवर्ग के लोगों की जीवन-शैली पर आधारित है। उपन्यास चेतनाप्रवाह शैली ''स्ट्रीम ऑफ कोनसीसिनेस'' में लिखा गया है। उपन्यास का विचार-सूत्र प्रेम और संभोग तथा उसकी परितृप्ति से जुड़ा हुआ है। उसके हिस्से की धूप की भाँति यहाँ भी कोई आर्थिक-सामाजिक समस्या नहीं है। हम

चाहें तो उसे उच्चवर्ग के लोगों के चोंचले भी कह सकते है। मृदुलाजी ने कथा-साहित्य में यह सहजतया रेखांकित किया जा सकता है कि उनकी अधिकांश नायिकाएँ अप्राप्त के प्रति विर्कषण के भावात्मक तनाव में दृष्टिगत होती है। डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल ने मन-वृन्दावन में एक स्थान पर लिखा है - ''इस दुनिया में सब कहीं-न-कहीं इसी तरह प्रेम करते हैं, एक दूसरे को दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को यही करूणा है, जो प्राप्त है उसे कोई नहीं प्यार करता।'' ७९

''चितकोबरा''उपन्यास के द्वारा लेखिका कदाचित अपनी यह थियोरी प्रतिपादित करना चाहती है कि तन और मन की संपूर्ण परितृप्ति कभी भी एक से नहीं होती जहाँ तक संतुष्ट होता है वहाँ मन असंतुष्ट रह जाता है और जहाँ मन संतुष्ट होता है और वहाँ पर तन की आवश्यकताएँ वहाँ शायद पूरी नहीं होती। ''चितकोबरा'' उपन्यास की मनु एक तरफ महेश से जुड़ी हुई है, दूसरी तरफ रिचर्ड से। ''उसके हिस्से की धूप'' में मनीषा जितेन से तलाक के लेती है। ''चित कोबरा''की मनु एक दूसरा रास्ता निकाल देती है। उसकी यौन क्षुब्धा की तृप्ति जहाँ महेश द्वारा होती है वहाँ उसकी आत्मा की खोराक रिचर्ड से मिलती है। प्रायः यह देखा गया है कि स्त्री की भटकन के-पीछे यौन अतृप्ति एक मुख्य कारण होता है। शैलेष मटियानी कृत उपन्याय ''किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई'' में नर्मदाबेन की भटकन के पीछे नगीनभाई सेठ की शारीरिक अक्षमता ही थी। यहाँ ऐसा नहीं है। मनु की शारीरिक तृप्ति तो महेश से हो जाती है, किंतु उसकी मानसीक आत्मिक और बौद्धिक क्षुधा अतृप्त रहती है। स्वयं मनु यह अनुभव करती है कि ''सेक्स की जैसी उद्धाम और आवेशमय अनुभूति उसे महेश से होती है उतनी रिचर्ड सेभी नहीं होती।''८०

मनु की जिंदगी महेश और रिचर्ड से जुड़ी हुई है। उसके लिए उसने एक ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि वर्ष में कुछ दिन अपने प्रेमी रिचर्ड को मिलने की गुंजाईश बना लेती है। ''मानो इन कुछ दिनों में वह अपनी चेतना की बैटरी को चार्ज कर लेती है। इन दिनों की अनुभव-गमन में वर्ष के शेष दिन गमकने-बमकते रहते है। वह ताणा तरीण हो उठती है। महेश उसकी शारीरिक तपण को बुझाता है, वहाँ रिचर्ड उसके मन की वीणा के तारों

झंकृति प्रदान करता है।''[८१] ऐसा प्रतीत होता है कि मृदुलाजी अपने समग्र लेखन में गुप्तजी द्वारा अभिव्यंजित ''दोनों ओर प्रेम पलता है''वाले सिद्धांत को गलत सिद्ध करनेकी बरसक कोशिश में है। इस संदर्भ में उनकी धारणा है- ''कोई भी इंसान एक ही समय में एक-दूसरे को प्यार नहीं करते...जब एक करता है...।''

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यासों में लेखक महानगरीय जीवन के उच्चवर्गीय जीवन को रेखांकित करता है, जिसमें आर्थिक समस्याओं का अभाव दृष्टिगत होता है। यहाँ जो समस्याएँ है, वे मानसिक न मनोवैज्ञानिक प्रकार की है।

o o

कोहरे : ---

दीप्ति खंडेलवाल आधुनिक लेखिकाओं में एक चर्चित नाम है। कोहरे उपन्यास में उन्होंने महानगरीय जीवन की छद्म-शैली को उकेरा है जिसमें स्त्री-पुरूष के संबंधों पर खुलेपन्ट से विचार किया गया है। हमारा आधुनिक महानगरीय जीवन कोहरे के ही मानिंद होता है, जिसमें सबकुछ गड़मगड़ हो जाता है। महानगरीय परिवेश में जीवन-मूल्य बितनी क्षिप्रगति से बदल रहे हैं, उसे भी यहाँ रेखांकित किया गया है।

महानगरीय जीवन का यह खुलापन, एक विशेष तबके में, एक छलावा-मात्र सिद्ध होता है, उसे लेखिका ने स्मिता और सुनील, स्मिता के मम्मी-पापा ती स्मिता के भाई निशीथ और उसकी पत्नी एंजला के माध्यम से उद्घाटित किया है।

स्मिता एक सुशिक्षित एवं आधुनिक विचारोवाली लड़की है। वह प्रशांत नामक युवक को चाहती थी, किंतु प्रशांत के पिता और स्मिता के बीच शत्रुता थीं। इन दोनों की शत्रुता का भोग स्मिता को देना पड़ता है। अतः स्मिता का विवाह सुनील नामक एक ''Play Boy'' किस्म के युवक से होता है। विवाह से पूर्व सुनील के जीवन में दर्जनों लड़कियाँ आ चुकी थी। सुनीला एक ऐसा युवक है, जो यौन- उन्मुक्तना और स्वच्छंदता को आधुनिक जीवन का पर्याय मानता है, किंतु उसकी अधकचरी मानसिकता का ही परिणाम है।

उसका यह दृष्टिकोण किसी सामंतकालीन व्यक्ति रूप में ही स्वीकारता है। वह स्वयं तो दिन-रात अनेक लड़कियों से "फलटिंग" करता रहता है, किंतु दूसरी तरफ चाहता है कि सिम्मी (स्मिता का प्यार का नाम सिम्मी है) किसी अन्य पुरूष से न मिले, न बातचीत करे न ही किसी प्रकार का संपर्क रखे। अतः अनेक लड़कियों से संबंध होते हुए भी जब विवाह की बात आती है, तो वह स्मिता को ही प्रपोज करता है। इस प्रकार प्रेम अनेकों से और विवाह किसी एक से इस थियोरी में वह मानता है। यहाँ महानगरीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में हमारे उच्चवर्गीय समाज की मानसिकता का एक अभिक्षप्त आयाम लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

कई बार यह देखा गया है कि ऊपर निद्दष्ट परिवेश और तबके के लोग यौन-उन्मुक्तता देते भी हैं, तो इस प्रकार की उन्मुक्तता निहायत मध्यकालीन और सामंती प्रकार की है। सिम्मी को वह किसी प्रकार छूट-छाट नहीं देता। यहाँ तक कि उसका रेडियो-स्टेशन जाना भी उसे अच्छा नहीं लगता। डान्स-फ्लोट पर सिम्मी को किसी दूसरे के साथ नाचते वह देख नहीं सकता था। एक बार सिम्मी अपनी कविता सुनील को सुनाती है, तब व्यंग्यात्मक मुद्रा में सुनील उसे कहता है "लेकिन देखिए, मेरी कबूतरी जी आप कविता लिखेंगी तो सिर्फ मेरे लिए... छपने-छपाने के लिए नहीं। कविता मंजूर। इस पर एक बार सिभी सिसकते हुए पूछती है- "तुम तो मेरी ईडीविजुएलिटी को कायम रखना चाहते थे। तुम हो ने तो कहा था कि मेरे अस्तित्व को जीने दोगे ? वह सब क्या था ? ऐसे तो में घुट जाऊँगी।"तब सुनील ने कहा था- "कहा था लेकिन तुम मेरे ढंग से अपनी ईडीविजुएलिटी को बनाए रख सकती हो। अपने ढंग से नहीं।"[८२]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सुनील का स्वयं को मार्डन या, फोरवड समझना केवल एक सुविधापरस्त तरीका है। वह सचमुच में मोर्डन है नहीं। आधुनिकता तो एक गत्यात्मक, प्रगतिकामी, समाजोन्मुखी प्रक्रिया है। केवल पत्नीन्मुखी जीवन-मूल्य आधुनिकता को ईमानदारी से परिभाषित नहीं कर सकते। वस्तुतः कोई भी कला, यदि वह कला है, तो वह जीवन-विरोधी हो ही नहीं सकती। किंतु हमारे यहाँ बहुत से लोग कई भाषा लिबास और तौर-

तरीकों में ही आधुनिकता को देखते हैं। यह बाहरी और थोथी आधुनिकता है। सुनील उसी का पक्षधर है। इस प्रकार के आधुनिकतावाद को डॉ. शिवकुमार मिश्र न केवल इतिहास-विरोधी, मनुष्य-विरोधी और अन्ततर कला-विरोधी भी बताया है।[८३]

स्मिता एक आधुनिक सुशिक्षित महिला है। सुनील के ऐसे मध्यकालीन सामन्ती मीललोपने के भाव को वह अस्वीकृत करती है। एक स्थान पर वह अपने भावों को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त करती है- "मैं कामायनी की श्रद्धा नहीं, ईड़ा हूँ, भावना नहीं प्रज्ञा हूँ, मात्र स्पन्दनमयी नहीं तर्कमयी भी- मात्र समार्पिता नहीं आधिकारमयी भी।.......मैं हृदय के साथ बुद्धि भी रखती हूँ। यदि सर्वस्व चाँहूगी भी। अधिकार दूंगी तो लूँगी भी। चेतना के जीवन के सन्दर्भ स्वप्न और यथार्थ के सारे सन्दर्भ ही नहीं, अर्थ भी बदल चुके हैं।"[८४]

पहले सुनील सोचता था कि सिम्मी उसकी यौन-स्वच्छन्दता को बर्दाश्त कर लेती, किंतु ऐसा नहीं होता। सिम्मी अपने पुत्र निक्की को लेकर घर चली जाती है। इससे तो सुनील का साहस और भी बढ़ जाता है। वह अपनी स्त्री-मित्रों को खुले आम ले आता है। एक बार वह ईरा घोष नामक एक युवति को अपने Bed-room में ले आता है। सुनील के इस व्यवहार से वह अपना आपा खो देती है। ईरा-घोष के सामने ही आग-बबूला होते हुए सुनील से कहती है- यह सब गैरकानूनी है, मैं तुम्हारी रिपोर्ट कर दूँगी। इस पर सुनील बड़े इत्मीनान से कहता है- "मैं आपसे डायवर्स का सूट फाइल कर चुका हूँ, तुम्हें मुक्त करता हूँ।"[८५] सुनील के इस उत्तर से सिम्मी अवाक रह जाती है, सिम्मी सुनील की नस-नस से वाकेफ है। वह कितने घटियापन पर उत्तर सकता है। उसका उसे अंदाज़ा है। उसे इसका भी एहसास है कि "निभाव-खर्च" न देना पड़े, इसलिए वह उसे चरित्र-हनन की सीमा तक घसीट सकता है। यहाँ सुनील का व्यवहार "रेत की मछली" "कान्ता भारती" के शोभन जैसा है। शोभन भी कुंतल के साथ यही करता है, बल्कि वह तो सुनील से भी एक कदम आगे जाता है, एक बार तो वह अपनी पत्नी कुंतल की गोद में अपनी प्रेमिका मीनल का सिर रखकर उसके साथ सहवास करता है।[८६]

पार्टनर है। बाप-बेटे दोनों मिलकर एक स्त्री को अंग-भंग करके तहखाने में डालकर कई-कई वर्षों तक उसे बंद रखते है। यह स्त्री और कोई नहीं अजय की पहली पत्नी और वी.के. की बहू है। उसे तहखाने में इसलिए कैद कर रखा है कि वह इन दोनों के व्यसायिक रहस्य को जान गई है।

उसके बाद माधुरी नामक एक दूसरी युवति से अजय का विवाह करवा दिया जाता है। यह शादी भी अपने व्यवसायिक उल्लू को सीधा करने के लिए की जाती है। अपने व्यवसायिक हितों के कारण ही वे लोग माधुरी को भी सुप्रिया का नाम देकर आकाश नामक एक युवक से उसका विवाह करवा देते हैं। उस समय वी.के कन्या के पिता का रोल अदा करता है अजय उसका भाई हो जाता है। क्योंकि अपने व्यवसाय के लिए वे आकाश को फाँसना चाहते हैं। माधुरी या सुप्रिया यह सब चुपचाप बर्दाश्त कर लेती है। क्योंकि उसके भाई को इन लोगों ने एक हत्या के आरोप में फँसाया है और उसके एवज़ में यह लोग माधुरी को ब्लेकमेल कर रहे हैं।

ये लोग सुप्रिया का विवाह आकाश से इसलिए करवाते हैं कि आकाश के ज़रिए उनका व्यवसाय आगे बढ़े, परंतु यह नाटक करते-करते सुप्रिया सचमुच में आकाश को चाहने लगती है और एक दिन उसको बचाने के उपक्रम में स्वयं ज़हरवाला खाना खा लेती है। आकाश को सुप्रिया की मृत्यु का अत्यंत दुःख होता है और वह उन लोगों के रैकेट का पर्दाफाश कर देता है। इस कार्य में C.B.I. इन्सेपक्टर राकेश आकाश की सहायता करता है। इस रैकेट-रिंग को तोड़ने में कमली नामक एक लड़की का भी बड़ा हाथ है। कमली सुप्रिया के यहाँ नौकरानी का काम करती थी। वस्तुतः उसे राकेश ने ही वहाँ लगाया था। कमली के माध्यम से इन लोगों के रहस्य का पत्ता चलता है। रैकट का पर्दा-फाश होने पर वी.के. अपने पुत्र अजय की हत्या कर देता है। स्वयं भी आत्महत्या करना चाहता है, परंतु राकेश-बाबू की समय सूचकता के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता है और वह पकड़ा जाता है। सुप्रिया मरते-मरते आकाश के पत्रकार मित्र अमित को अपनी अंतिम इच्छा बताती है, जिसमें वह आकाश से अनुरोध करती है कि वह कमली से विवाह कर ले। इस प्रकार ढहती दीवारें महानगर के 'अन्डर वर्ल्ड' से जुड़े लोगों की रहस्य रोमांच कथा

है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि पैसा ही इन लोगों का भगवान है और उसके लिए वे किसी हद तक गिर सकते है। प्यार, दया, माया, ममता, मानवता जैसे मानवीयमूल्यों का उनके लिए कोई अर्थ नहीं। ये भावना शून्य लोग है। एक स्थान पर अजय कहता है -"ये सब (प्यार की चाहत आदि) फालतू सेन्टिमेन्टालिटी हमारी इन लाइन के लिए नहीं। आवर्स इज ए दवेण्टी फोर अवर्स जोब। अगर माधुरी (उसकी व्याहता पत्नी) चाहे तो किसी भी पुरूष के साथ जा सकती है, लेकिन मेरे लिए ये प्यार मोहब्बत की बातें सब बकवास है।"[८८]

अपने व्यवसायिक हितों के लिए जो पति अपनी ब्याहता पत्नी की शादी किसी दूसरे से करवा दे और उसमें उसका पिता (उस स्त्री का ससुर) भी सहभागी बने, ये कितनी विडम्बना है। ऐसे लोगों से मानवीय-मूल्यों की आशा रखना बेकार है।

इसमें महानगरीय जीवन के निम्नलिखित आयामों को विशेषतया रेखांकित किया गया है। प्रथमतः महानगर में जो ड्रग्स की तस्करी हो रही है, और उसमें राष्ट्रीय-अंर्तराष्ट्रीय माफिया जगत की जो साझेदारी-भागीदारी है उसको उद्घाटित किया गया है। ड्रग की इस तस्करी में कैसे-कैसे लोग जुड़े हुए हैं और उसके लिए किस प्रकार के हथकंड़ो को अपनाया जा रहा है, इसे भी यहाँ स्पष्ट किया गया है। द्वितियतः महानगरीय जीवन में संबंध और रिश्ते किस प्रकार अपनी प्राथमिकता खो रहे हैं ओर भौतिकता किस प्रकार मानवीयमूल्यों पर हावी हो रही है, इसे भी यहाँ ज्ञापितः किया गया है। किसी बच्चे को अपहृत करके उसकी हत्या कर देना और उसके पेट में हीरे रख देता है। इन लोगों के लिए व्यापारिक जीवन का एक अंग है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मीनादास के इस उपन्यास में इधर पिछले कुछेक वर्षो से महानगरीय जीवन अन्डरवर्ल्ड के लोगों के हाथों में किस तरह जा रहा है, उसे यथार्थतः चित्रित किया गया है।

००

कुछ अन्य महानगरीय परिवेश के उपन्यास :---

पूर्ववर्ती पृष्ठों में जिन महानगरीय परिवेश के उपन्यासों की विवेचना हुई है इनके अतिरिक्त निम्नलिखित महानगरीय परिवेश के उपन्यास हैं जिनका परवर्ती अध्यायों में विभिन्न आयामों को विश्लेषित करते हुए किसी-न-किसी संदर्भ में उल्लेख हुआ है :--- छिन्नमस्सता (प्रभा खेतान), मुझे चाँद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा) , उन्माद (डॉ. भगवान सिंह), अग्निगर्भा (अमृतलाल नागर), काली आँधी (कमलेश्वर), कुमारिकाएँ (कृष्णा अग्निहोत्री), चिड़ियाघर (गिरिराज किशोर), प्रिया (दीप्ति खंडेलवाल), कोहरे (दीप्ति), नगरपुत्र हंसता है (धर्मेन्द्र गुप्त),निस्संगता (ब्रजनारायण सिंह),नरक-दर-नरक (ममता कालिया), यह भी नहीं (महीप सिंह), अकेला पलाश (मेहरूनिशा परवेज), दो लड़कियाँ (रजनी पनिकर), कर्करेखा (शशिप्रभा शास्त्री), अपने पराये (शशिभूषण सिंहल), छाया मत छूना मन (हिमांशु जोशी), सूखा बरगद (असगर वजाहत), मुखड़ा क्या देखे (अब्दुल बिस्मिल्लाह), कलिकाल : वाया बाईपास (अलका सराव जी) आदि आदि । इन उपन्यासों में महानगरीय जीवन के विभिन्न आयाम दृष्टिगत होते हैं ।

निष्कर्ष :---

अध्याय के समग्रावलोकन द्वारा निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विवेच्य उपन्यासों में मुख्यतया मुंबई, दिल्ली, बैंग्लोर, पटना आदि महानगरों का चित्रण हुआ है । उनमें महानगरीय जीवन की छिन्नभिन्नता को रेखांकित किया जा सकता है । संयुक्त परिवार की विभावना टूट रही है और उसके कारण युग्मक और एकक परिवार अस्तित्व में आ रहे हैं । फलतः अनेक पारिवारिक समस्याएँ जन्म ले रही हैं । पति-पत्नी उभय की नौकरी के कारण जहाँ एक तरफ आर्थिक समृद्धि और संपन्नता बढ़ रही है वहाँ पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति के प्रवेश के कारण दाम्पत्य जीवन कहीं-कहीं टूटता-भहराता दृष्टिगत हो रहा है । नारीशिक्षा ने जहाँ महिलाओं के गौरव और अस्मिता में वृद्धि की है वहाँ नारी शोषण के कुछ नये कोण भी उभर कर आए हैं । स्त्री-पुरुष के अहंभाव के कारण निरीह बच्चों को सर्वाधिक त्रासद स्थितियों से

गुजरना पड़ता है। महानगरीय जीवन की आपाधापी और व्यस्तता ने मानवीय संवेदनाओं को भोंथरा कर दिया है। मनुष्य स्वार्थी और स्वकेन्द्रित होता जा रहा है। वह अपनी जमीन, अपने परिवेश, अपने परिवार तथा स्नेही संबंधियों से कट रहा है। फलतः अलगाव की जो स्थिति निर्मित होती है उसके कारण उसमें अजनवीपन का भाव विकसित हो रहा है। भौतिकता के आग्रह तथा चीजपरस्ती ने मानवीय संबंधों पर गहरा प्रभाव डाला है। पारिवारिक, वैयक्तिक, और बौद्धिक अलगाव के कारण कई बार व्यक्ति स्वयं को 'अनफिट' समझता है।

सन्दर्भ

१- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई , पृ. १४९

२- "वे दिन" - निर्मल वर्मा - पृ. २११

३- हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख : श्रीकांत वर्मा : पृ. २२५

४- अँधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश : पृ. ३३१

५- अँधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश : पृ. ३४५

६- अँधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश : पृ. ४२२

७- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई , पृ. १४७

८- तीसरा आदमी : कमलेश्वर : प्रकाशकीय वक्तव्य ।

९- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई , पृ. १३९

१०- तीसरा आदमी : कमलेश्वर : पृ.८३

११- डाक बंगला : कमलेश्वर : पृ.२७

१२- द्रष्टव्य : डाक बंगला : कमलेश्वर : पृ.११६

१३- द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ.पारूकान्त देसाई ,पृ.१३७,१३८

१४- द्रष्टव्य : डाक बंगला : कमलेश्वर : पृ.१२४

१५- द्रष्टव्य : मछली मरी हुई : राजसमूह चौधरी : पृ.१२१-१२५

१६- द्रष्टव्य : मछली मरी हुई : राजसमूह चौधरी : पृ.११

१७- द्रष्टव्य : सोठोत्तरी हिंदी उपन्यास : डॉ. पारूकांत देसाई : पृ.१२१

१८- हिंदी लघु उपन्यास : Dr.घनश्याम मधुप : पृ. १७७

१९- द्दष्टव्य : सोठोत्तरी हिंदी उपन्यास : Dr.पारूकांत देसाई पृ. १३०

२०- पचपन खम्बे लाल दीवारें : उषा प्रियवंदा : पृ. १०९-११०

२१- विवेक के रंग : संपादक देवीशंकर अबस्थी : पृ. ३७

२२- द्दष्टव्य : साठोत्तरी हिंदी उपन्यास : Dr.पारूकांत देसाई पृ. ५१

२३- टेराकोटा : लक्ष्मीकांत वर्मा : पृ. ८

२४- टेराकोटा : लक्ष्मीकांत वर्मा : पृ.३-५

२५- टेराकोटा : लक्ष्मीकांत वर्मा : पृ. ८१

२६- डॉ.विवेकीराय : प्रकर, संयुक्त विशेषांक, मई-जून : पृ.४३

२७- द्दष्टव्य : रेखा : भगवती वर्मा : पृ. २३

२८- द्दष्टव्य : किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई का : शैलेष मटियानी : पृ.

२९- द्दष्टव्य : किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई का : शैलेष मटियानी : पृ. ९४

३०- द्दष्टव्य : किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई का : शैलेष मटियानी : पृ. १००

३१- उद्धृत द्वारा : डॉ. पारूकांत देसाई : समीक्षायण : पृ 115

३२- बोरिवली से बोरिबंदर तक : शैलेष मटियानी : पृ. १२८

३३- भूमिका : कबूतर खाना : पृ.

३४- मेरी तैंतीस कहानियाँ : शैलेष मटियानी : भूमिका : पृ. २५

३५- बोरिवली से बोरिबंदर तक : शैलेष मटियानी : पृ. ९९

३६- बोरिवली से बोरिबंदर तक : शैलेष मटियानी : पृ. १८५

३७- शैलेष मटियानी का कथा साहित्य : Dr.सलीम व्होरा : पृ. ९२-९३

३८- लेखकीय वक्तव्य : छोटे-छोटे पक्षी

३९- उद्धृत द्वारा : समीक्षायण : डॉ. पारूकांत देसाई : पृ

४०- मुर्दाघर : पृ. २१

४१- मुर्दाघर : पृ. २१

४२- मुर्दाघर : पृ. ४३

४३- मुर्दाघर : पृ. १७७

४४- मुर्दाघर : पृ. १७९

४५- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई , पृ. १६४

४६- मुर्दाघर : जगदम्बा प्रसाद दीक्षित : पृ. २०३

४७- कड़ियाँ : भीष्म साहनी : पृ. १२

४८- कड़ियाँ : भीष्म साहनी : पृ. १७०

४९- कड़ियाँ : भीष्म साहनी : पृ. १६६

५०- तत्सम : राज़ीसेठ : पृ. १०६

५१- तत्सम : राज़ीसेठ : पृ. १९९

५२- हिंदी उपन्यासों में रूढ़ि मुक्त नारी : डॉ. राजरानी शर्मा : पृ. ३२४

५३- आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डॉ. पारूकांत देसाई : पृ. १०८

५४- पतझड़ की आवाज़े : पृ. ९५

५५- द्रष्टव्य : चिड़िया घर : गिरिराज किशोर : पृ. ५२

५६- द्रष्टव्य : आलोचना अंक : ४१: १९७७ : डॉ. मधुरेश : पीड़ा की मोर्चबन्दी।

५७- द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय-परिवेश के उपन्यास : डॉ.पारूकांत देसाई : पृ. ११२

५८- द्रष्टव्य : २५२ उपन्यासों की समीक्षा : संपादक : डॉ. सुषमा गुप्ता : पृ. २७२

५९- द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय-परिवेश के उपन्यास : डॉ.पारूकांत देसाई : पृ. ११२

६०- द्रष्टव्य : पतझड़ की आवाज़े : निरूपमा सेवती : पृ. ५२

६१- द्रष्टव्य : पतझड़ की आवाज़े : निरूपमा सेवती : पृ. ५३

६२- द्रष्टव्य : पतझड़ की आवाज़े : निरूपमा सेवती: पृ. ६३

६३- द्रष्टव्य : पतझड़ की आवाज़े : निरूपमा सेवती : पृ. ५३

६४- क्लोज-अप : सत्येन्द्र शरत् : पृ. २३६

६५- द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय-परिवेश के उपन्यास : डॉ.पारूकांत देसाई : पृ. ११३

६६- हिंदी उपन्यासों में कामकाजी महिला : डॉ. रोहिणी अग्रवाल : पृ. १०७-१०८

६७- बँटता हुआ आदमी : निरूपमा सेवती : पृ. ९७

६८- द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय-परिवेश के उपन्यास : डॉ.पारूकांत देसाई : पृ. ५१

६९- वही : ९४

७०- मन्नू भण्डारी : संचेतना द्वारा आयोजित गोष्ठि : संचेतना- समकालीन उपन्यास - अंक : डिसेम्बर १९९१ : पृ. ६३

७१- द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई , पृ. १५६

७२- द्रष्टव्य : संचेतना, दिसम्बर, १९७१ : पृ. ६२

७३- द्रष्टव्य : आपका बण्टी : पृ. ३६

७४- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ. पारूकान्त देसाई , पृ. १५६

७५- दिनांत : शीला रोहेकर : पृ. ६२

७६- दिनांत : शीला रोहेकर : पृ. ६२

७७- जीवन ना अंतरंग : लीलाबेन पटेल : संदेश : गुजराती दैनिक : दिनांक : २२/६/९३

७८- उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. १४६

७९- मन वृन्दावन : डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल : पृ. ७७

८०- द्रष्टव्य : डॉ. यश गुलाटी : प्रकर : अक्टूबर, १९८० पृ. १९

८१- आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय-परिवेश के उपन्यास : डॉ.पारूकांत देसाई : पृ. ६७ .

८२- कोहरे : दीप्ति खण्डेलकाल : पृ. २५

८३- द्रष्टव्यं : आलोचना के प्रगतिशील आयाम : डॉ. शिवकुमार मिश्र : पृ. ६४

८४- द्रष्टव्य : साप्ताहिक हिंदुस्तान, ३-७-७७, पृ. २८

८५- द्रष्टव्य : साप्ताहिक हिंदुस्तान, ३-७-७७, पृ. ३५

८६- द्रष्टव्य : हिंदी लेखिकाओं के स्वतंत्र्योत्तर उपन्यासों में पुरूष-कल्पना : डॉ. उर्मिला प्रकाश : पृ. २८०

८७- कोहरे : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. ५

८८- ढहती दीवारें : मीना दास : पृ. १००